अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

फ़रवरी २०२०

श्रीमाँ के वचन

विषय-सूची

(श्रीमाँ के वचन)

प्रार्थना/सम्पादकीय		३
श्रीमाँ की कुछ अनुभूतियाँ		५
प्रकृति की धड़कन		२१
'पुरोधा' : दैनन्दिनी		४०
मानवजाति का विकास	नवजातजी	४४
"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी' से	४७
'योग के तत्त्व' : कठिनाइयाँ तथा प्रगति (१)	श्रीअरविन्द	५०
"अविकसित"... कौन?	वन्दना	५४
मुझसे मुख मत मोड़ो (कविता)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	५८
सच्चा आनन्द	नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	आवरण ३

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

प्रार्थना

२१ फ़रवरी १९१४

हर रोज़, हर क्षण, एक नये और अधिक पूर्ण समर्पण का अवसर होना चाहिये, कर्म के बारे में भ्रमों से भरे, उत्साहपूर्ण, घबरा देने वाले, अत्यधिक सक्रिय समर्पणों का नहीं, बल्कि गहरे और नीरव समर्पण का, जिसका दिखलायी देना ज़रूरी नहीं है पर जो सभी कर्मों में प्रवेश करता और उन्हें रूपान्तरित कर देता है। हमारे एकाकी और शान्त मन को सदा तेरे अन्दर विश्राम करना चाहिये और उस शुद्ध शिखर से वास्तविकताओं का, क्षणिक और अस्थायी आभासों के पीछे शाश्वत, एकमात्र 'सद्वस्तु' का ठीक-ठीक प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये।

हे प्रभो, मेरा हृदय सारी व्याकुलता और परिताप से शुद्ध हो गया है; वह स्थिर और अचञ्चल है और तुझे सभी चीज़ों में देखता है; और हमारे बाहरी कार्य कुछ भी क्यों न हों, भविष्य के भण्डार में हमारे लिए जो भी परिस्थितियाँ क्यों न हों, मैं जानती हूँ कि केवल तू ही जीता है, कि केवल तू ही अपने निर्विकार चिर स्थायित्व में वास्तव है और हम तेरे ही अन्दर निवास करते हैं।... **वर दे कि समस्त पृथ्वी पर शान्ति हो।**

श्रीमाँ

सम्पादकीय : फ़रवरी श्रीमाँ के जन्मोत्सव का महीना है और सोने में सुहागा, यह अधिवर्ष भी है—२९ फ़रवरी आश्रम में 'स्वर्णिम-दिवस' के रूप में अन्य दर्शन-दिवसों की तरह मनाया जाता है। इस अंक में हमने श्रीमाँ के जीवन की कुछ प्रेरक अनुभूतियों का समावेश किया है।

साथ ही इस अंक के कुछ पृष्ठ मोना-दा को श्रद्धाञ्जलि-स्वरूप समर्पित हैं। हम सबके प्रिय कप्तान, श्रीमाँ के चहेते मोना-दा ने पिछले वर्ष हम सबसे विदा ले ली।

1956

29 February - 29 March
Lord, Thou hast willed, and I execute :
A new light breaks upon the earth,
A new world is born.
The things that were promised are fulfilled

१९५६

२९ फरवरी – २९ मार्च

प्रभु तूने चाहा और मैं चरितार्थ कर रही हूँ।
धरती पर एक नया प्रकाश फूट रहा है।
एक नया जगत् जन्म ले चुका है।
जिन चीज़ों के लिए वचन दिया गया था वे चरितार्थ हो गयी हैं।

श्रीमाँ

श्रीमाँ की कुछ अनुभूतियाँ

सुरक्षा का ज्योति-मण्डल

एक बार पैरिस में मैं सैं मिशैल बुलवार (Boulevard) को पार कर रही थी। यह अन्तिम सप्ताहों की बात थी; मैंने यह निर्णय लिया था कि इतने महीनों में मुझे अपने अन्दर की चैत्य उपस्थिति, आन्तरिक भगवान् के साथ संयुक्त हो जाना है और मैं केवल उसी की बात सोच रही थी, मेरा इसके अतिरिक्त और किसी चीज़ से कोई सरोकार न था। मैं उस समय लुक्समबुर्ग के पास रहती थी और शाम को रोज़ लुक्समबुर्ग बग़ीचे में घूमने के लिए जाती थी, पर मैं सदा अन्तर्मुख ही रहती थी। वहाँ एक चौराहा-सा था और अन्तर्मुख रहते हुए पार करने के उपयुक्त वह स्थान नहीं था, यह बहुत बुद्धिसंगत भी नहीं था। इस प्रकार एक दिन जब मैं उसी अवस्था में चल रही थी, अचानक मुझे एक धक्का-सा लगा, मानों किसी ने मेरे ऊपर चोट की हो। मैं सहज प्रेरणावश पीछे की ओर कूदी और ज्यों ही मैं पीछे कूदी एक ट्राम-कार वहाँ से निकल गयी—इस ट्राम-कार की उपस्थिति को मैंने एक हाथ की दूरी से अनुभव कर लिया था। इसने मेरे घेरे को, मेरे सुरक्षा के घेरे को छू लिया था—वह उस समय बहुत सशक्त था, मैं पूरी तरह गुह्यविद्या में डूबी हुई थी और मैं उसे रखना जानती थी—सुरक्षा के इस ज्योतिमण्डल को उसका आघात प्राप्त हो गया था और उसने सचमुच मुझे पीछे की ओर फेंक दिया, मानों मुझे कोई भौतिक आघात लगा हो। साथ ही मुझे चालक से कुछ अपशब्द भी सुनने पड़े! मैं पीछे की ओर कूदी और ट्रामकार ऐन समय पर निकल गयी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. १५३-५४

बचपन का सहज ध्यान

एक और भी चीज़ थी *(हँसी)* : बचपन से ही मैं, अचानक, किसी कार्य के बीच में या ठीक किसी वाक्य के बीच में या किसी भी चीज़ के बीच में अचानक ध्यान में चली जाती—और कोई नहीं जानता था कि यह क्या था! वे सब यही सोचते कि मैं सो गयी! लेकिन मैं सचेतन रहती, किसी वाक्य के बीच में उठा मेरा हाथ उठा ही रह जाता—और पुफ़्! मैं

ध्यान में चली जाती! *(माँ हँसती हैं)* बाहर से कुछ नहीं दीखता, लेकिन मेरे अन्दर बहुत तीव्र और रुचिकर अनुभूति चलती रहती। बहुत छुटपन से ही मेरे साथ यह हुआ करता।

एक बार की मुझे याद है (उस समय मैं दस या बारह साल की होऊँगी), मेरे माता-पिता के घर में क़रीब एक दर्जन लोगों का मध्याह्न-भोज था, सभी इतवार की अपनी-अपनी उत्तम पोशाकों में सजे-धजे आये थे—वैसे परिवार के ही लोग थे, लेकिन फिर भी वह 'मध्याह्न-भोज' था और वहाँ कुछ विधि-विधान थे; संक्षेप में, सबको शिष्टाचार का पूरा ध्यान रखना होता था। मैं मेज़ के एक सिरे पर थी—मेरे पास ही रिश्ते का मेरा एक भाई बैठा था जो बाद में, कुछ समय के लिए लूव्र (Louvre) का 'डायरेक्टर' भी था (उसमें कलात्मक बुद्धिमत्ता थी, बहुत योग्य युवक था वह)। तो हम सब थे, और मुझे याद है कि मैं उसके वायुमण्डल में कुछ रोचक चीज़ को ध्यान से देख रही थी। (ध्यान रहे, हालाँकि मेरे अन्दर क्षमताएँ विद्यमान थीं, लेकिन मैं गुह्य चीज़ों के बारे में एकदम कुछ भी नहीं जानती थी... कुछ भी नहीं; अगर कोई मुझसे 'प्रभामण्डल' इत्यादि के बारे में बातें करता... तो मैं कुछ नहीं जानती थी) मैंने उसके परिवेश में जिस संवेदन का अनुभव किया मैं उसका अवलोकन कर रही थी और फिर, जैसे ही मैं काँटे से खाना अपने मुँह में डाल रही थी, कि मैं ध्यान में चली गयी, मैंने उड़ान ले ली! उसके बाद मुझे जो डाँट पड़ी! मुझसे कहा गया कि अगर मुझे तौर-तरीक़े नहीं आते तो मुझे खाने की मेज़ पर नहीं आना चाहिये! *(श्रीमाँ ठहाकों के साथ हँसती हैं)*।

शरीर से बाहर जाना

इसी काल में मैं हर रात अपने शरीर के बाहर जाकर वह कार्य किया करती थी जिसका उल्लेख मैंने *'प्रार्थना और ध्यान'* में किया है। हर रात, एक ही समय पर—जब सारा घर बहुत शान्त होता था—मैं अपने शरीर से बाहर निकल जाती और मुझे अनेकानेक अनुभूतियाँ होतीं। और फिर क्रमशः मेरा शरीर नींद में चलने वाला शरीर बन गया (यानी, सूक्ष्म शरीर की चेतना अधिकाधिक सचेतन बन गयी, साथ ही भौतिक शरीर तथा सूक्ष्म आकार के बीच की कड़ी बहुत अधिक मज़बूत हो गयी)। नींद में

चलने की मेरी आदत हो गयी—लेकिन मैं सामान्य निद्राचारियों की तरह नहीं थी: मैं उठती, अपनी दराज़ खोलती, पन्ना निकालती और कविताएँ लिखती... हाँ, कविताएँ—मैं, जिसमें कवि का लेशमात्र भी नहीं था! और मैं अन्य चीज़ें संक्षेप में लिख लेती, फिर बड़ी सचेतनता के साथ सब कुछ दराज़ में यथास्थान वापस रख देती, बड़ी सावधानी से दरवाज़ा इत्यादि बन्द करके वापस अपने बिस्तर पर आ जाती।...

५ *अगस्त १९६१* *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

मुझे इसी को जीना है

वस्तुतः, अगर मैं अपने योग को देखूँ... जब मैं पाँच साल की थी (अवश्य ही मैंने उसके पहले से ही शुरू कर दिया होगा, लेकिन वह स्मृति कुछ धुँधली, अस्पष्ट-सी है)... हाँ, तो सचेतन रूप से मैंने तब शुरू किया। निस्सन्देह, मुझे इसका ज़रा भी भान न था कि वह क्या था। लेकिन मेरी पहली अनुभूति यहाँ चेतना की उपस्थिति की हुई *(सिर के ऊपर)* जिसे मैंने पाँच वर्ष की उम्र में 'प्रकाश' तथा एक 'शक्ति' के रूप में अनुभव किया; और मैंने इसे यहाँ अनुभव किया *(समान मुद्रा)*। वह बहुत ही सुखद संवेदन था। मैं अपने कमरे में बिलकुल अकेली उस आराम-कुरसी पर बैठ जाया करती थी जिसे ख़ास मेरे ही लिए बनवाया गया था, और मैं... (मुझे पता नहीं था कि वह क्या था, समझ रहे हो न, वह कोई चीज़ नहीं थी, कुछ नहीं था—मानसिक रूप से शून्य था) और मुझे किसी बहुत प्रदीप्त वस्तु का **बड़ा ही सुखद**, बहुत प्रबल अनुभव होता था, और वह यहाँ था *(सिर के ऊपर)*। वह थी 'चेतना'। और मैं अनुभव करती थी कि "मुझे इसी को जीना है, मुझे यही बनना है।" हाँ, स्वाभाविक रूप से इतने सारे शब्द नहीं हुआ करते थे, लेकिन... *(माँ ऊपर की ओर अभीप्सा की मुद्रा करती हैं।)* और तब मैं उसे नीचे खींचा करती थी, क्योंकि वही... सचमुच, वही मेरे जीवन का उद्देश्य था।

कला, संगीत तथा चित्रकारी

फिर, बहुत ही छोटी उम्र में (क़रीब आठ या दस) अपनी पढ़ाई के साथ-साथ मैंने चित्रकारी भी शुरू कर दी। बारह वर्ष की उम्र में तो मैंने रेखाचित्र भी बनाने शुरू कर दिये थे। कला तथा सौन्दर्य के सभी पहलुओं

पर कार्य करना आरम्भ कर दिया था, लेकिन, संगीत तथा चित्रकारी मुझे विशेष रूप से मन्त्रमुग्ध कर देते थे। उस काल में मैं एक बहुत ही तीव्र प्राणिक विकास के दौर से गुज़र रही थी, वैसे ही जैसे अपने बचपन के प्रारम्भिक वर्षों में मुझे सदैव एक आन्तरिक 'पथ-प्रदर्शक' की उपस्थिति का भान होता था; और मैं सब तरह के अध्ययन में लौलीन हो गयी : संवेदनों, अवलोकनों के अध्ययन में, तकनीक, तुलनात्मक अध्ययनों, यहाँ तक कि स्वाद लेने, सूँघने, सुनने इत्यादि से सम्बद्ध सभी संवेदनों और भावों के पूरे क्षेत्र को गहराई से नापने लगी। और यह चीज़ जीवन के सभी पहलुओं में फैल गयी, जितने अनुभव जीवन जुटा सकता था, सभी —दुःख-दर्द, आनन्द, मुसीबतें, कष्ट, सभी मेरे अध्ययन के दायरे में आ गये! और साथ ही, मूल्यांकन करने, निश्चय करने, वर्गीकरण करने, व्यवस्थित करने और क्रमबद्ध करने की वह आन्तरिक उपस्थिति सदैव ही मेरे साथ बनी रही।

२५ जुलाई १९६२ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

संगीत के द्वारा अभीप्सा का उठना

पैरिस के यहूदी मन्दिरों में कितना सुन्दर संगीत बजता है, ओह, कितना सुन्दर संगीत! अपनी पहली अनुभूतियों में से एक मुझे एक मन्दिर में हुई। वह विवाह का उत्सव था, और संगीत भव्य था—बाद में मुझे पता चला कि वह *Saint-Saens* का ऑरगन संगीत था—पैरिस का दूसरे नम्बर का संगीत—शानदार! मैं चौदह साल की थी और अपनी माँ के साथ बहुत ऊपर गैलरी में बैठी हुई थी, उस समय यह संगीत चल रहा था। वहाँ काँच की खिड़कियाँ थीं—सफ़ेद, उन पर कोई डिज़ाइन नहीं था। संगीत से आनन्दित मैं उन खिड़कियों में से एक को निहार रही थी कि अचानक खिड़की से बिजली की कौंध की भाँति प्रकाश चमका। एकदम से बिजली चमकी। वह मेरे अन्दर प्रवेश कर गयी—मेरी आँखें खुली हुई थीं—वह इस तरह प्रवेश कर गयी *(भंगिमा)* और मुझे... मुझे विशाल तथा सर्व-शक्तिमान् होने का अनुभव हुआ... यह चीज़ कई दिनों तक मेरे अन्दर बनी रही। बाद में मैंने जाना कि यह मेरे अतीत की एक सत्ता थी जो उस संगीत से उठती हुई अभीप्सा के द्वारा मेरे अन्दर दोबारा आ गयी थी।

२९ अप्रैल १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

एक नये जगत् का जन्म हो चुका है—वे सब जो इसमें स्थान पाना चाहते हैं उन्हें सच्चाई के साथ इसके लिए अपने-आपको तैयार करना होगा।

श्रीमाँ

ज्ञान के लिए प्यास

अठारह साल की उम्र में मुझे याद है, मेरे अन्दर जानने की, समझने की बहुत ही तीव्र चाह थी, आवश्यकता थी... क्योंकि मुझे अनुभूतियाँ हो रही थीं—मुझे विभिन्न प्रकार के अनुभव हो रहे थे—लेकिन मैं ऐसे परिवेश में जी रही थी जो मेरी झोली में कोई भी सुअवसर नहीं डाल रहा था कि मैं कोई ऐसा बौद्धिक ज्ञान पा लेती जो मुझे इन सारी अनुभूतियों का अर्थ समझा पाता: मैं तो इस सबके बारे में बात भी नहीं कर सकती थी। मुझे अनुभूति पर अनुभूति हो रही थी... कई सालों तक, रात को मुझे अनुभूतियाँ होती थीं (लेकिन मैं बहुत सावधान रहा करती थी कि किसी से भी इसकी चर्चा न करूँ!)—पूर्व जन्म की स्मृतियों, हर तरह की चीज़ का मैं अनुभव करती थी, लेकिन मेरे पास बौद्धिक ज्ञान का कोई भी आधार नहीं था। (निःसन्देह, इस सबका लाभ यह था कि मेरी अनुभूतियाँ मेरी मानसिक कल्पनाएँ नहीं थीं; वे पूरी तरह से सहज-स्वाभाविक रूप से आ रही थीं।) लेकिन उनका अर्थ जानने की मेरे अन्दर इतनी प्रबल इच्छा थी, इतनी प्रबल!... मुझे याद है हम एक ऐसे घर में रहते थे (ऐसी बड़ी-सी जगह जहाँ कई सारे मकान होते हैं) हाँ, तो हमारे मकान के बगल में ही कैथोलिक धर्म मानने वाले कुछ युवा रहते थे जिनकी अपने धर्म में अटूट श्रद्धा थी... उनके अन्दर यह दृढ़ विश्वास था कि बस उन्हीं का धर्म धर्म है। और यह सब देख कर, अचानक एक दिन, बाल बाते समय मैंने अपने-आपसे कहा, 'ये लोग कितने भाग्यशाली हैं कि जन्म से ही ये एक धर्म को मानते हैं और बिना ननुनच किये, उसी के पीछे-पीछे चलते हैं! कितना आसान है यह! विश्वास करने के अलावा तुम्हें कुछ और करना ही नहीं है—यह बात सारी चीज़ को कितना सरल बना देती है।' मैं ऐसा सोच रही थी, और जैसे ही मैं अपनी सोच के बारे में सचेतन हुई कि क्या ऊटपटाँग सोच रही हूँ मैं *(हँसी)*, तो बहरहाल, मैंने अपने-आपको एक अच्छी डाँट पिलायी और कहा: 'आलसियों की सरदार!'

जानना, जानना, जानना!... हमेशा जानना। जानते हो, मैं कुछ नहीं जानती थी, साधारण जीवन की सामान्य चीज़ों के अलावा सचमुच मैं कुछ भी नहीं जानती थी; कोई भी बाहरी ज्ञान मुझमें नहीं था। मैंने हर चीज़, हर एक चीज़ सीखी। न केवल वह जो मुझे सिखाया गया बल्कि वह भी जो

मेरे भाई को सिखाया जाता था—कठिन गणित इत्यादि विषय! मैं सीखती गयी, सीखती गयी, सीखती चली गयी—लेकिन वह मेरे लिए किसी काम का नहीं निकला। इनमें से कोई भी चीज़ मेरी अनुभूतियों के किसी भी अर्थ को नहीं समझा पायी—कुछ भी नहीं। मैं एक चीज़ नहीं समझ पाती थी! जानना!...

जब मुझसे कहा गया कि भगवान् हमारे अन्दर ही बसते हैं—*गीता* की शिक्षा, लेकिन ऐसे शब्दों में मुझसे कहा गया जिन्हें कोई पाश्चात्य वासी समझ सके—यह कि एक आन्तरिक 'उपस्थिति' होती है, कि व्यक्ति अपने अन्दर 'भगवान्' को लिये रहता है, ओह!... कितना बड़ा रहस्योद्घाटक था यह मेरे लिए! कुछ ही क्षणों में, अचानक, मेरी समझ में सब कुछ आ गया, सब कुछ, सब कुछ। मैं सब कुछ समझ गयी। और इससे उसी क्षण भगवान् के साथ मेरा सम्पर्क स्थापित हो गया।

२९ अप्रैल १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

अब्दुल बहा

मैं बहाई धर्म के प्रवर्तक बहा उल्ला के पुत्र और उनके उत्तराधिकारी अब्दुल बहा को भली-भाँति जानती थी। वे जेल में पैदा हुए थे और शायद चालीस वर्ष की आयु तक जेल में ही रहे। मेरे ख़याल से जब वे जेल से छूटे, उनके पिता दिवंगत हो चुके थे। उन्होंने अपने पिता के धर्म का प्रचार करना शुरू किया।...

*

वे सुप्रसिद्ध बहा उल्ला के बेटे थे जिन्हें सूफ़ियों से बढ़ कर प्रगतिशील और उदारतापूर्ण विचारों का प्रचार करने की वजह से जेल में डाल दिया गया था। कट्टर मुसलमान इनका विरोध करते थे। उनकी मृत्यु के बाद, उनके बेटे और एकमात्र उत्तराधिकारी ने निश्चय किया कि वे अपने पिता के धार्मिक विचारों का प्रचार करेंगे और इस उद्देश्य से उन्होंने संसार के बहुत-से देशों की यात्रा की। उनका स्वभाव बहुत अच्छा था। वे बहुत ही सरल थे, उनकी अभीप्सा उतनी ही महान् थी। वे मुझे बहुत अच्छे लगते थे...।

उनकी सच्चाई और भगवान् के लिए अभीप्सा सरल और बहुत

स्वाभाविक थीं। एक दिन जब मैं उनसे मिलने गयी तो वे अपने शिष्यों के सामने भाषण देने वाले थे, लेकिन वे बीमार थे और उठ भी नहीं सकते थे। शायद सभा को स्थगित करना पड़ता। जब मैं उनके पास गयी तो उन्होंने कहा : "जाइये, और आज के भाषण में मेरा स्थान ले लीजिये।" मैं चौंक पड़ी। मैं ऐसा अनुरोध सुनने के लिए तैयार न थी। मैंने उनसे कहा : "मैं आपके सम्प्रदाय की नहीं हूँ और उसके बारे में कुछ जानती भी नहीं। मैं उनके सामने कुछ कैसे कह सकती हूँ?" लेकिन उन्होंने आग्रह किया। वे बोले : "इसकी परवाह मत कीजिये, जो भी कहेंगी ठीक होगा। जाइये और कुछ बोलिये...। बैठक में ज़रा ध्यान कीजिये और फिर बोलिये।" आख़िर उन्होंने मुझे बोलने के लिए तैयार कर ही लिया...।

फिर एक बार उन्होंने मुझसे पैरिस में रह कर उनके शिष्यों की ज़िम्मेदारी लेने के लिए कहा। लेकिन मैंने कहा : "मैं स्वयं आपके सम्प्रदाय की मान्यताओं पर विश्वास नहीं करती, इसलिए यह काम स्वीकारने का सवाल ही नहीं उठता।"...

अब्दुल बहा की शिक्षा

सभी पैगम्बर, सभी शिक्षक जो मनुष्यों के लिए भागवत आदेश लेकर आये हैं, कम-से-कम एक बात पर सहमत हैं, उन्होंने इस विषय में एक-सी शिक्षा दी है।

उनमें से सबने हमें सिखलाया है कि बड़े-से-बड़े सत्य भी हमारे द्वारा उपयोगी कर्मों में रूपान्तरित हुए बिना व्यर्थ हैं। सभी ने अपने अन्तःप्रकाश को दैनिक जीवन में जीने की आवश्यकता की घोषणा की है। सबने कहा है कि वे हमें पथ दिखलाते हैं, परन्तु हमें स्वयं उस पर चलना होगा। कोई भी व्यक्ति, वह चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, हमारे बदले यह काम नहीं कर सकता।

बहा उल्ला इस नियम के अपवाद न थे। मैं आपके सामने उनके वचन उद्धृत न करूँगी (पैरिस की एक सभा को श्रीमाँ सम्बोधित कर रही थीं)। आप उन्हें मेरी ही तरह या मुझसे भी ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं। बहा उल्ला ने कितनी बार कहा है : "कथनी नहीं, करनी। कर्म के बिना शब्द किसी काम के नहीं हैं। हमें संसार के लिए उदाहरण बनना चाहिये।"

वास्तव में, यह बहुत ज़रूरी है कि हममें से हर एक संसार के लिए उदाहरण हो। हम मनुष्यों को यह दिखा कर ही कि शाश्वत सत्यों के साथ आन्तरिक लेन-देन के द्वारा अव्यवस्था को समस्वरता में, कष्ट को शान्ति में बदला जा सकता है, उन्हें उस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर सकते हैं जो उन्हें मोक्ष की ओर ले जायेगा। लेकिन अब्दुल बहा यह शिक्षा देकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते। वे उसे जीते हैं और विश्वास पैदा करने की उनकी शक्ति इसी में है।

सचमुच, कौन है ऐसा जिसने अब्दुल बहा को देखा हो और उनकी उपस्थिति में पूर्ण भलाई, मधुर प्रशान्ति, उनकी सत्ता से निकलती हुई शान्ति का अनुभव न किया हो?

और अपने पुत्र के मुख से दिये बहा उल्ला के अन्तःप्रकाश हमारी समझ में और भी ज़्यादा अच्छी तरह आते हैं और हमें विश्वास दिलाते हैं, क्योंकि वे उन्हें अपने जीवन में उतार रहे हैं।

शायद आपमें से कुछ को यह ख़याल आये: "अगर अब्दुल बहा इस सौन्दर्य को चरितार्थ कर सकते हैं तो इसका कारण यह है कि वे महापुरुष हैं, लेकिन हम लोग..."

निश्चय ही, हमारा प्रमाद प्रयास करने से इन्कार करने के लिए इससे अच्छी युक्ति नहीं ढूँढ़ सकता, परन्तु यह है व्यर्थ का बहाना।

निःसन्देह, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच ऐसा भेद होता है जिसे मिटाया नहीं जा सकता और यह सत्ताओं के अनन्त सोपान में उनकी विशेष भूमिका, उनके स्थान और उनके पद से उत्पन्न होता है। लेकिन यह पद या भूमिका कुछ भी क्यों न हो, उसमें रहते हुए व्यक्ति अपने निजी गुणों को पूर्णता तक विकसित कर सकता है। हर एक पूर्ण सच्चाई, पूर्ण पवित्रता और उस गहरी समस्वरता को पाने की अभीप्सा कर सकता है जो वैश्व व्यवस्था के साथ उसका मेल बिठाती है, और यह अभीप्सा करनी ही चाहिये।

मैं एक ऐसे वृद्ध सन्त को जानती थी जो हर व्यक्ति की तुलना ऐसे खनिज से करते थे जो थोड़ा-बहुत घटिया और थोड़ा-बहुत मूल्यवान् है, लेकिन सभी में सोना है। इस खनिज को आध्यात्मिकता की पावन आग में तपाया जाये तो कुठाली-तली में कम या ज़्यादा भारी डली मिलेगी

जो शुद्ध सोने की होगी।

इसलिए हमें अपने अन्दर छिपे इस सोने को उसके उद्‌गम से मुक्त करना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १२२-२४

अब्दुल बहा को विदाई

पिछले सोमवार को अब्दुल बहा ने हमसे विदा ली और वे कुछ ही दिनों में पैरिस छोड़ जायेंगे। मुझे मालूम है कि इससे बहुत-से हृदय रिक्तता का अनुभव करेंगे और दुःखी होंगे।

फिर भी, केवल शरीर हमें छोड़ रहा है। और शरीर क्या है? ठीक वही चीज़ जिसमें छोटे-बड़े, बुद्धिमान् या मूर्ख, पार्थिव या दिव्य, सब एक-से हैं। हाँ, आप विश्वास रखें कि उनका शरीर ही हमसे विदा ले रहा है, उनका विचार निष्ठापूर्वक हमारे साथ रहेगा और उनका अपरिवर्तनशील स्नेह हमें लपेटे रहेगा, उनका आध्यात्मिक प्रभाव सदा एक-सा बना रहेगा, बिलकुल वह-का-वही। वे भौतिक दृष्टि से हमारे पास हैं या हमसे दूर इससे कुछ आता-जाता नहीं, क्योंकि दिव्य शक्तियाँ भौतिक शक्तियों के विधानों से पूरी तरह बाहर रहती हैं; वे सर्वव्यापक हैं, सदा सभी ग्रहणशील लोगों को, सभी सच्ची अभीप्सा करने वालों को सन्तुष्ट करने में लगी रहती हैं।

यद्यपि हमारी बाहरी सत्ता के लिए उनके भौतिक शरीर को देखना, उनकी आवाज़ सुनना, उनकी उपस्थिति में रहना सुखकर है, फिर भी हमें सचमुच अपने-आपसे कहना चाहिये कि चूँकि हमें ये चीज़ें अनिवार्य लगती हैं, इससे यह प्रकट होता है कि हम अभी तक आन्तरिक जीवन, सच्चे जीवन के बारे में बहुत कम सचेतन हैं।

हम उस दिव्य जीवन की अद्‌भुत गहराइयों को भले न पा सकें जिसके बारे में विरले ही सतत सचेतन होते हैं, फिर भी विचार के क्षेत्र में हम देश और काल के नियमों से छुटकारा पा लेते हैं।

किसी के बारे में सोचना उसके पास होना है। दो व्यक्ति चाहे कहीं भी क्यों न हों, चाहे वे भौतिक दृष्टि से एक-दूसरे से हज़ारों किलोमीटर दूर क्यों न हों, अगर वे एक-दूसरे के बारे में सोचते हैं तो वे बहुत वास्तविक रूप में साथ होते हैं। अगर हम अपने विचार को काफ़ी एकाग्र कर सकें

और अपने-आप पर्याप्त रूप में उस विचार पर एकाग्र हो सकें तो हम जिसके बारे में सोच रहे हैं उसके बारे में समग्र रूप से सचेतन हो सकते हैं, और यदि वह मनुष्य है तो कभी-कभी उसे देख और सुन भी सकते हैं—हर हालत में, उसके विचार तो जान ही सकते हैं।

इस तरह अलगाव नहीं रहता, यह एक भ्रान्तिपूर्ण आभास है और, चाहे फ़्रांस में हो या अमरीका में, ईरान या चीन में, हम जिससे प्रेम करते हैं, जिसके बारे में सोचते हैं, हमेशा उसके पास रहते हैं।

लेकिन यह तथ्य हमारे जैसे मामले में और भी ज़्यादा वास्तविक हो उठता है जहाँ हम एक विशेष रूप से सक्रिय, सचेतन विचार के साथ सम्पर्क में आना चाहते हैं, एक ऐसे विचार के साथ जो अनन्त प्रेम का रूप ले लेता और उसे प्रकट करता है, एक ऐसा विचार जो प्रेम-भरी, पिता-तुल्य सहायता करने की उत्कण्ठा में सारी धरती को अपने में समो लेता है और जो अपने-आपको उसके सुपुर्द कर देते हैं उनकी सहायता करने में जिसे हमेशा प्रसन्नता होती है।

इस मानसिक सम्पर्क का अनुभव कीजिये और आप देखेंगे कि दुःख के लिए कोई स्थान नहीं है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १२९-३०

श्रीअरविन्द का ज्योति-मण्डल

सुनो, जैसा कि मैंने किया था जब मैं जापान से आयी थी : मैं जहाज़ पर, समुद्र में थी, किसी चीज़ की आशा नहीं कर रही थी (अवश्य ही मैं अपने आन्तरिक जीवन में व्यस्त थी, पर मैं भौतिक रूप से जहाज़ पर विद्यमान थी), तब एकाएक, अकस्मात्, पॉण्डिचेरी से लगभग दो सामुद्रिक मील की दूरी पर, वातावरण के, वायु के प्रकार में, मैं यहाँ तक कह सकती हूँ कि उसके भौतिक प्रकार में इतना अधिक परिवर्तन हो गया कि मैं जान गयी कि हम श्रीअरविन्द के ज्योति-मण्डल में प्रवेश कर रहे हैं। यह एकदम **भौतिक** अनुभव था और मैं विश्वास दिलाती हूँ कि जिस किसी व्यक्ति में पर्याप्त जाग्रत् चेतना है वह इस चीज़ को अनुभव कर सकता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २६६

ऐसे लोग होते हैं जो निरन्तर एक उच्चतर चेतना में रहते हैं, जब कि दूसरों को वहाँ पहुँचने के लिए प्रयास करना पड़ता है। परन्तु यहाँ यह एकदम अलग ही बात है; जिस अनुभव की बात मैं कह रही थी उसमें उसका पूरा मूल्य देने वाली बात यह थी कि मैं उसकी आशा बिलकुल नहीं कर रही थी, बिलकुल ही नहीं। मैं बहुत अच्छी तरह जानती थी, मैं बहुत दीर्घकाल तक और लगातार श्रीअरविन्द के "आध्यात्मिक" वातावरण के सम्पर्क में, यदि मैं ऐसा कह सकूँ तो, रह चुकी थी, परन्तु मैंने कभी इस सम्भावना की बात नहीं सोची थी कि वह भौतिक वातावरण में परिवर्तित हो सकता है और मैं ज़रा भी उसकी आशा नहीं कर रही थी, और यही चीज़ थी जिसने उस अनुभव को पूरा मूल्य दिया, क्योंकि वह अनुभव उस तरीक़े से आया, बिलकुल अचानक, ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति दूसरे तापमानवाले या दूसरी ऊँचाईवाले स्थान में प्रवेश करता है...। मुझे नहीं पता कि तुमने ध्यान दिया है कि नहीं कि जिस हवा में तुम साँस लेते हो वह हमेशा वही नहीं होती, एक देश की हवा में और दूसरे देश की हवा में, एक स्थान की हवा में और दूसरे स्थान की हवा में भिन्न प्रकार के स्पन्दन होते हैं। यदि तुम सचमुच सूक्ष्म-भौतिक स्तर का इस प्रकार का बोध प्राप्त करने के अभ्यस्त हो तो तुम तुरत कह सकते हो, "आह! यह वायु फ़्रांस की वायु जैसी है" अथवा "यह जापान की हवा है।" यह स्वाद या गन्ध की तरह ही एक अवर्णनीय वस्तु है। परन्तु इस उदाहरण में बात ऐसी नहीं है, यह एक दूसरी इन्द्रिय का बोध है। यह एक भौतिक इन्द्रिय है, यह कोई प्राणमय या मनोमय इन्द्रिय नहीं है। यह भौतिक जगत् की इन्द्रिय है, पर जो पाँच इन्द्रियाँ सामान्यतया हमें प्राप्त हैं उनसे भिन्न अन्य इन्द्रियाँ भी हैं—बहुत-सी दूसरी इन्द्रियाँ भी हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २७३-७४

एक प्रकार का स्वर्ग

और शहरों में, उदाहरणार्थ, टोकियो जैसे शहर में, जो संसार का सबसे बड़ा शहर है, लन्दन से भी बड़ा है, और जो दूर-दूर तक फैला हुआ है, दूर (अब मकान आधुनिक ढंग के बन गये हैं, नगर का समूचा केन्द्र बहुत भद्दा हो गया है, पर जब मैं वहाँ थी, तब तक वह सुन्दर था),

नगर के बाहर के भागों में, उन भागों में जहाँ व्यापारिक केन्द्र नहीं होते, प्रत्येक मकान में अधिक-से-अधिक दो मंज़िलें होती हैं और एक बग़ीचा —वहाँ हमेशा ही एक बग़ीचा होता है जिसमें सदा ही दो-एक बहुत सुन्दर पेड़ होते हैं। और फिर, तुम यदि टहलने निकलो... टोकियो में अपने रास्ते का पता लगाना बड़ा कठिन होता है; वहाँ ऐसी सीधी सड़कें नहीं हैं जिनकी दोनों ओर संख्या के अनुसार मकान बने होते हैं, और तुम सहज ही भटक जाते हो। तब तुम इधर-उधर घूमने लगते हो—हमेशा ही उस देश में मनुष्य यों ही इधर-उधर घूमता रहता है—तुम घूमते हुए जा रहे हो और अचानक एक सड़क के कोने पर मुड़ जाते हो और एक प्रकार के स्वर्ग में पहुँच जाते हो : वहाँ बड़े शानदार वृक्ष लगे हैं, एक मन्दिर है जो उतना ही सुन्दर है जितनी सुन्दर वहाँ की अन्य चीज़ें हैं, अब तुम वहाँ शहर की कोई चीज़ नहीं देखते, अब न कोई यातायात है, न कोई ट्रामगाड़ी; एक कोना है, मनोहर रंगोंवाले वृक्षों का एक कोना, और यह सुन्दर है, सचमुच सुन्दर। तुम नहीं जानते कि तुम वहाँ कैसे पहुँच गये, लगता है कि तुम वहाँ भाग्यवश ही पहुँच गये हो। उसके बाद तुम मुड़ते हो, अपना रास्ता खोजते हो, तुम फिर इधर-उधर भटकते हो और अन्यत्र पहुँच जाते हो। फिर कुछ दिनों बाद तुम ठीक इसी स्थान पर आना चाहते हो, पर ऐसा करना असम्भव हो जाता है, ऐसा लगता है मानों वह स्थान अदृश्य हो गया हो। और यह बात इतनी अधिक बार घटित होती है, यह इतनी सच है कि ऐसी कहानियों की चर्चा जापान में बहुधा हुआ करती है। उनका साहित्य परी-कथाओं से भरा हुआ है। वे तुम्हें एक कहानी सुनाते हैं जिसमें कहानी का नायक अचानक एक मायापुरी में पहुँच जाता है; वह परियों को देखता है, वह अद्‌भुत प्राणियों को देखता है, वह फूलों के बीच, संगीत के बीच बड़े आनन्द का समय बिताता है; सब कुछ परम सुन्दर होता है। दूसरे दिन उसे वहाँ से चले जाना पड़ता है; यही उस स्थान का विधान है, वह चला जाता है। वह फिर से वापस आने की कोशिश करता है, पर कभी वापस नहीं आता। वह फिर दूसरी बार उस स्थान को नहीं पा सकता : वह वहाँ था, वह अदृश्य हो गया है!... इस नगर में, इस देश में, आदि से अन्त तक, प्रत्येक वस्तु तुम्हारे मन पर अस्थायित्व की, अप्रत्याशित की, असामान्यता की छाप डालती है। तुम सर्वदा ही ऐसी

वस्तुओं के सम्मुख उपस्थित होते हो जिनकी तुम्हें कोई आशा नहीं थी; तुम उन्हें फिर से पाना चाहते हो और वे सब गुम हो गयी हैं—उन्होंने कोई दूसरी ही चीज़ बनायी है जो उतनी ही आकर्षक है। कलात्मक दृष्टि से, सौन्दर्य के दृष्टिकोण से, मुझे नहीं लगता कि संसार में कोई भी देश उतना सुन्दर है जितना कि जापान।

नैतिक नियम तथा आध्यात्मिकता

अब अपने चित्रण को पूरा कर देने के लिए मुझे यह भी बता देना चाहिये कि जिन चार वर्षों तक मैं वहाँ रही, मैंने वहाँ आध्यात्मिकता का यथासम्भव पूर्ण अभाव देखा। जापानी लोगों में एक अद्‌भुत नैतिकता है, वे बिलकुल कठोर नैतिक नियमों के अनुसार जीवन बिताते हैं, उन्होंने जीवन के छोटे-से-छोटे ब्योरों में भी एक प्रकार का मानसिक नियम बना रखा है; व्यक्ति को एक विशेष ढंग से ही खाना होगा, किसी दूसरे ढंग से नहीं, उसे एक विशेष ढंग से ही नमस्कार करना चाहिये, किसी दूसरे ढंग से नहीं, उसे किन्हीं विशेष शब्दों का ही उच्चारण करना चाहिये, सभी शब्दों का नहीं; जब किन्हीं विशेष लोगों को सम्बोधित करना हो तो उसे एक विशेष प्रकार से ही बोलना चाहिये; जब दूसरों से बातें करनी हों तो उसे एक दूसरे प्रकार से बोलना चाहिये। यदि तुम किसी दूकान में कुछ ख़रीदने जाओ तो तुम्हें एक विशिष्ट वाक्य ही बोलना चाहिये; यदि तुम वह वाक्य न बोलो तो तुम्हारी ओर ध्यान नहीं दिया जायेगा : वे तुम्हारी ओर मज़ाकभरी दृष्टि से ताकेंगे और ज़रा भी नहीं हिलेंगे! परन्तु तुम यदि वह वाक्य कहो तो वे पूरी सावधानी और तत्परता के साथ तुम्हारी सेवा में जुट जायेंगे और, यदि आवश्यक हो तो, तुम्हारे बैठने के लिए एक गद्दी ले आयेंगे और पीने के लिए एक प्याली चाय। और, प्रत्येक बात इसी तरह की है। फिर भी, तुम्हें एक बार भी ऐसा नहीं लगेगा कि तुम अद्‌भुत ढंग से व्यवस्थित मानसिक-भौतिक राज्य से भिन्न अन्य किसी दूसरे राज्य के सम्पर्क में हो। और उन लोगों में कितनी ऊर्जा है! उनकी समूची प्राण-सत्ता ऊर्जा में बदल गयी है। उनमें एक प्रकार की असाधारण सहनशक्ति है, पर कोई प्रत्यक्ष अभीप्सा नहीं है : बस, उन्हें नियम का पालन करना चाहिये, इसके लिए वे बाध्य हैं। यदि कोई व्यक्ति वहाँ नियमों की अधीनता

नहीं मानता तो वह यूरोपियनों की तरह रह सकता है जिन्हें वे लोग बर्बर मानते हैं और जिनसे देश में बलात् घुस आने वालों की तरह घृणा करते हैं, परन्तु तुम यदि जापानियों के बीच जापानी जीवन बिताना चाहो तो तुम्हें ठीक उन्हीं की तरह आचरण करना होगा, अन्यथा तुम उन्हें इतना दुःखी बना दोगे कि तुम उनके साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं रख सकोगे। उनके घर में तुम्हें एक विशेष तरीक़े से रहना होगा, जब तुम उनसे मिलो तो तुम्हें एक विशिष्ट ढंग से उन्हें नमस्कार करना होगा...। मेरे ख़याल से मैं तुम्हें उस जापानी की कहानी पहले सुना चुकी हूँ जो हमारा एक घनिष्ठ मित्र था, और जिसकी मैंने उसकी अन्तरात्मा के सम्पर्क में आने में सहायता की थी—और जो भाग गया था। वह हमलोगों के साथ देहात में था और मैंने उसका सम्पर्क उसके चैत्य पुरुष के साथ करा दिया था; उसे अनुभव प्राप्त हुआ था, ज्ञानोदय हुआ था, सम्पर्क, चौंधिया देने वाला आन्तरिक सम्पर्क प्राप्त हुआ था। और दूसरे दिन सवेरे वह वहाँ नहीं था, वह वहाँ से भाग गया था! बाद में, छुट्टियों के बाद जब मैं शहर में उससे फिर मिली तो मैंने उससे पूछा, "पर तुम्हें हो क्या गया था, तुम भाग क्यों गये?"—"ओह! आप तो समझती ही हैं कि मैंने अपनी अन्तरात्मा को पा लिया और देखा कि अपने देश और मिकाडो (राजा) के प्रति जो मेरी श्रद्धा है उससे कहीं अधिक वह शक्तिशाली है; मुझे अपनी अन्तरात्मा की आज्ञा का अनुसरण करना पड़ता और फिर मैं अपने सम्राट् की एक राजभक्त प्रजा न रह जाता। मुझे भागना पड़ा।" बस, यही बात है! यह सब यथार्थतः सत्य है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३६७–७०

अगर तुम पूरी सच्चाई के साथ भागवत इच्छा को व्यक्त करने के लिए कर्म करो तो बिना अपवाद के सभी कर्म निःस्वार्थ हो सकते हैं। लेकिन जब तक तुम उस स्थिति तक न पहुँचो तब तक ऐसे कर्म होते हैं जो भगवान् के साथ सम्पर्क साधने में ज़्यादा सहायक होते हैं।

—श्रीमाँ

श्रीमाँ के साथ मोना दा

प्रकृति की धड़कन

मर के टूटा है कहीं सिलसिलाए क़ैदे-हयात?
मगर इतना है कि ज़ंजीर बदल जाती है।

ज़िन्दगी की दूसरी करवट थी मौत।
ज़िन्दगी करवट बदल कर रह गयी।।

—फ़ानी

मोना दा आज हमारे बीच नहीं रहे। ११ अक्तूबर २०१९ को वे सदा के लिए श्रीमाँ की गोद में समा गये, लेकिन उनके लिए स्वर्गीय शब्द का उच्चारण करना कुछ अटपटा लगता है... क्योंकि जिन्होंने उन्हें देखा है, उनकी वह बुलन्द आवाज़—चाहे वह आश्रम के 'प्लेग्राउण्ड' में दर्शन-दिवसों पर 'मार्च-पास्ट' के बाद—Victoire à La Douce Mère —प्यारी माँ की विजय—और उसके बाद तीन बार 'वन्दे मातरम्' का विजय-घोष हो, चाहे 'स्पोर्ट्स-ग्राउण्ड' में दो दिसम्बर के वार्षिक कार्यक्रम के अभ्यास के दौरान हो—आज भी हम सभी के कानों में गूँज-प्रतिगूँज रही है।

मोना दा श्रीमाँ के पास नियमित रूप से जाया करते थे और श्रीअरविन्द के महाकाव्य 'सावित्री' से लेकर, पुष्पों के आध्यात्मिक अर्थों की व्याख्या, फ़ुटबॉल, खेल-कूद में लगी चोटों इत्यादि विभिन्न विषयों पर माँ के साथ उनकी बातचीत हुआ करती थी। माँ के पास से आकर वे सब कुछ लिख लिया करते थे। स्मृति-मञ्जूषा से निकली उनकी यह सम्पदा अमूल्य है। इसके चार भाग प्रकाशित हो चुके हैं, कुछ आने बाक़ी हैं।

श्रीमाँ के जन्मदिवस के महीने के इस अंक में हम मोना दा के प्रति भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए, उनकी नवीनतम प्रकाशित अंग्रेज़ी पुस्तक 'Throb of Nature' से अनूदित कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं—सं.

अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में मोना दा लिखते हैं—श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द मानवता को यह बतलाने आये हैं कि हम अपने चारों तरफ़ जिन कठिनाइयों से घिरे रहते हैं उन सबको पार किया जा सकता है, कि

उनमें फँसे रहने की हमें कोई आवश्यकता ही नहीं है, उनसे निकलने का रास्ता है। और उसके लिए मनुष्य को अपने अन्दर गहरे उतर कर वहाँ छिपी भागवत उपस्थिति को ढूँढ़ निकालना होगा।

साथ ही मनुष्य को अब केवल अपने मन पर ही निर्भर नहीं रहना होगा, यह सच है कि मन ने अनगिनत महान् कार्य सिद्ध किये हैं, लेकिन अब तक 'सत्य' के लिए उसकी खोज अँधेरे में टटोल ही बनी हुई है। अब समय आ गया है कि हम अपने लंगर उठा कर नवीनतम और साहसिक अभियान के लिए कूच कर दें—उसकी खोज करें जो हमारी प्रतीक्षा में रत है कि कब हम इस आभासी जगत् के परे, 'प्रकृति' की धड़कन में, देश और काल की निस्सीमता के परे जाकर, वस्तुओं के गुप्त हृदय में पहुँच कर, अपनी सत्ता की गहराई में प्रवेश कर जायें।

श्रीमाँ, श्रीअरविन्द के धरती पर पदार्पण करने के तथ्य से अब हमें अपने सभी प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं, उस सबकी व्याख्या भी जो अभी हमारे लिए रहस्य बना हुआ है और हम अपने अस्तित्व के सच्चे कारण का भी पता लगा सकते हैं।

जब हम उन 'एकमेव' को पा लेंगे, हम जान जायेंगे।

'प्रकृति' के करोड़ों रूपों और असंख्य गतियों के पीछे 'उनकी' उपस्थिति का अनुभव करेंगे।

हम प्रभु की लीलाओं की 'लीला' का आनन्द उठायेंगे।

हमें बस 'उन्हें' ढूँढ़ निकालना है, स्वयं को पूरी तरह से 'उन्हें' ही सौंप देना है।

अन्दर छिपे हुए भगवान् को पुनः प्राप्त करना

जब व्यक्ति समझ जाता है, जब उसका पथ-प्रदर्शन उन आन्तरिक क्षेत्रों की ओर किया जाता है जहाँ भगवान् का एक भाग बसता है, तब वह न केवल दूसरे लोकों के रहस्यों को देखता है बल्कि इस जगत् के रहस्य भी उसके सामने उद्घाटित हो जाते हैं और वह 'प्रकृति माता' के अस्तित्व के सत्य को भी समझ सकता है—यह समझ सकता है कि 'प्रकृति' कैसे कार्य करती है, कैसे सृजन करती है, कि वह प्रत्येक व्यक्ति में, प्रत्येक वस्तु में प्रगति का बीज कैसे बो देती है... ताकि प्रत्येक अपने ही व्यक्तिगत

तरीक़े से पूरी तरह खिल कर उन 'भगवान्' से जुड़ जाये जो हर जीव के मूल में विद्यमान हैं। यही कारण है कि विश्व की प्रत्येक, प्रत्येक चीज़ में हम उस 'भागवत प्रकाश' की चिनगारी देख सकते हैं जो सभी चराचरों को जीवन प्रदान करता है।

यही चीज़ देती है बने रहने, सृजन करने, गुणन करने, रूप तथा आकार देने, विकसित करने का उत्साह तथा ऊर्जा और साथ ही एक नये स्तर की ओर खिलने तथा एक नये प्रकाश की ओर खुलने की शक्ति—इस संसार में 'प्रकृति' इसी कार्य में जुटी हुई है... प्रत्येक अणु-परमाणु में छिपे 'भगवान्' को पुनः प्राप्त करना...

प्रभु ने अपने-आपको अपनी सृष्टि में पूरी तरह से उँडेल दिया है—सृष्टि का कण-कण उन्हीं की 'उपस्थिति' से स्पन्दित होता है, उन्हीं में साँस लेता है, उन्हीं के 'प्रकाश' से भरा हुआ है और उन्हीं के 'प्रेम' में विकसित होता है।

संसार की विविधता में हमें 'उन्हें' ही उनकी अनेकता में पुनः प्राप्त करना है।...

पूर्णता की चाह

हमारे अन्दर पूर्णता की चाह होनी चाहिये। हर चीज़ में पूर्णता, और जानते हो, हर एक वस्तु में अधिकाधिक पूर्णता पाने की गुंजायश होती है, कहने का मतलब यह कि तुम्हारे अन्दर पूर्णता पाने की ललक होनी चाहिये, हमेशा, हमेशा... एक आन्तरिक उत्साह... और जब तुम केवल पूर्णता के लिए जीते हो—जैसे कि कुछ लोगों को जीवन में 'भगवान्' की आवश्यकता होती है, कुछ को 'सिद्धि' प्राप्त करनी है, कुछ सम्पूर्ण 'आत्मोत्सर्ग' करना चाहते हैं तो कुछ को आवश्यकता होती है 'पूर्णता' पाने की। पूर्णता की चाह करना माँ की चार महान् शक्तियों में से एक है—वह है महासरस्वती की शक्ति। १६ अक्तूबर १९६१

पूर्णता की प्यास

जानते हो, मनुष्य की चेतना के हर एक बढ़ते हुए स्तर पर पूर्णता की अपनी परिभाषा होती है। तुम सीढ़ी पर जितना ऊपर चढ़ते हो उतना

अधिक देखते हो कि पूर्णता का स्तर भी ऊँचा उठता जा रहा है। पूर्णता की कोई सीमा नहीं होती, उसका कहीं अन्त नहीं होता इसलिए पूर्णता के लिए हमारी प्यास भी सीमाहीन होनी चाहिये। तुम्हें इसी के लिए अभीप्सा करनी चाहिये।

और हम अपने जीवन में जो कुछ करते हैं, जितना समय इस पृथ्वी पर बिताते हैं, वह सारा समय हमें इसी पूर्णता के पथ पर न्योछावर कर देना चाहिये। हम जो करें, अच्छी से अच्छी तरह करें, पूर्ण से पूर्णतर की ओर बढ़ते हुए पूर्णतम तक पहुँचने का हमारा सतत प्रयास रहना चाहिये —यानी हम जो भी करें उसके सूक्ष्मतम ब्योरे को भी नज़रअन्दाज़ न करें, उत्साह खोये बिना, सभी कार्यों में एकमन हो जुटे रहें—हमें अपने पूरे दिल और ऊर्जा के साथ प्रयास करना चाहिये और इस चरम पूर्णता को पाने की उमंग और आशा में दृढ़ाग्रही बने रहना चाहिये।

तब हम निश्चित हो सकते हैं कि हमने रूपान्तर की ओर एक डग बढ़ा लिया है।

गभीर सामञ्जस्य को पाना

... जानते हो, जीवन की विभिन्न गतिविधियों के बीच सामञ्जस्य लाना बहुत ही कठिन होता है। हमें उन सबके बीच समस्वरता लाने का एक ऐसा तरीक़ा खोजना होगा जो उनमें एक ऐसी समझ ले आये कि हम विसंगतियों के सभी तत्त्वों को पार कर एक अधिक महान् सामञ्जस्य में निकल आयें, और मैं कहती हूँ, यह आसान नहीं है; इसके लिए व्यक्ति को अपनी विभिन्न भावनाओं, पसन्दों, आदतों, आवेगों के साथ-साथ विचारों तथा भावुकताओं पर क़ाबू पाकर उस व्यापक सामञ्जस्य को खोजना होगा जो उसकी गहरी अभीप्साओं की अभिव्यक्ति होगा।

हमें खोजना होगा वह सामञ्जस्य, वह लय-ताल जो ऐसा संगीत सुनाते हैं जो 'प्रभु' को निवेदित जीवन के आनन्द से धड़कता है।

हमें इसे ही पाना है—इस गहरे सामञ्जस्य को जो पृथ्वी की तथा सम्पूर्ण विश्व की सभी गतियों का मूल आधार है, जो इस सबको परम सुर-संगति में रखता है, उस स्पन्दन को जो प्रत्येक चराचर की गहराई में बसता है।

अगर व्यक्ति इसे पा ले, केवल तभी धरती पर सम्पूर्ण सामञ्जस्य

प्रतिष्ठित हो पायेगा, और तब न असामञ्जस्य के बेसुरे तार बजेंगे, न द्वित्व का बोलबाला होगा। मनुष्य को उस सत्य का ज्ञान नहीं है जो सभी चीज़ों को सँभाले रखता है, विश्व में समन्वय का एक विशाल वितान तान देता है, और तब पृथ्वी पर अधिकाधिक गहरा सामञ्जस्य स्थायी बन जाता है और मनुष्य के अन्दर सच्चे प्रेम का आदान-प्रदान सम्भव होता है।

या फिर, अगर हम अपने-आपको सभी चीज़ों से एकदम पृथक् कर लें और इस तरह अपने छोटे-से तुच्छ अहंकार से छुट्टी पा लें तब हम इस महान् वैश्व सामञ्जस्य को पा सकते हैं जो सभी कुछ को धारण करता और निम्न तथा उच्च, समस्त लोकों में व्याप्त रहता है।

प्रभु की करुणा

सुप्रभात!

सुप्रभात, मधुर माँ।

... तुम्हें पता है, व्यक्ति को स्वयं को प्रभु को समर्पित करना आना चाहिये... अगर तुम अपने-आपको मोल-तोल के भाव से नहीं दो, सहज रूप से, बिना किसी बाहरी अभिप्राय के समर्पित कर दो तो तुम शान्ति का बढ़िया पुरस्कार पाते हो। तब तुम्हारी ऐसी कोई प्रार्थना नहीं होती जिसकी सुनवायी न हो, जो तुम्हें लाभान्वित न करे। लेकिन तुम्हें यहाँ *(हृदय की ओर संकेत)* अर्पण की मुद्रा में रहना चाहिये और अचञ्चलता तथा प्रशान्ति के साथ प्रतीक्षा करनी चाहिये; तब तुम्हारी सभी प्रार्थनाओं को तुरन्त प्रत्युत्तर मिल जाता है।

'वे' यहाँ उपस्थित हैं *(मस्तक के ऊपर की ओर संकेत)* बहुत ही उदार, करुणा से भरपूर, धीरज के साथ हमारी प्रतीक्षा में रत कि कब कोई सच्ची प्रार्थना उठे और वे फ़ौरन उसका उत्तर दे सकें, कि अपनी करुणा तुम पर बरसा सकें ताकि तुम सब 'उन्हीं' से घिरे रहो। एक सच्ची पुकार, जो निष्कपटता के साथ 'उन' तक पहुँचती है, इससे बढ़ कर और कोई चीज़ उन्हें इतना प्रसन्न नहीं करती। 'वे' हर प्रार्थना को अपने प्रेम में पूरी तरह से लपेटे रहते हैं, लेकिन कोई भी इस बात से अभिज्ञ नहीं है!

बहरहाल, निराशा के क्षणों में, तुम्हारे दुःख-दर्द तथा संकटों में 'वे'

तुम्हें ठोस चिह्न तथा सच्चे संकेत देते हैं और तुम्हें कठिनाई से बाहर खींच निकालते हैं।

जब-जब तुम 'उन्हें' पुकारो तब-तब तुम्हें दिलासा और आराम देने के लिए वे तुरन्त आन उपस्थित होते हैं।

और अगले ही क्षण 'वे' भुला दिये जाते हैं, संकट से उबर आने के बाद व्यक्ति 'उनके' बारे में सोचता तक नहीं।

यह है हमारी कृतज्ञता!

हाँ, वे बदले में केवल प्रयास की एक सच्ची तथा सतत पुकार की माँग करते हैं।...

अभीप्सा की लौ

हमें अचञ्चल और शान्त रहना चाहिये और हमारे अन्दर अभीप्सा की अग्नि हमेशा चौकन्नी और सीधी ऊपर ही ऊपर की ओर उठती रहनी चाहिये।... इस लौ को देख रहे हो *(श्रीमाँ एक कार्ड पर एक लौ के चित्र की ओर संकेत करती हैं)*। यह अभीप्सा की ज्वाला है, वह ज्वाला, वह लौ जो ऊर्जस्वी है, और यह उठती है, ऊपर उठती है, उठती रहती है। यह है चैत्य ज्वाला... वह लौ जो 'शाश्वत' लौ का एक हिस्सा है—जो अग्नि या अन्तरात्मा है। यह है अभीप्सा की लौ, वह जो सब कुछ पवित्र और शुद्ध कर देती है। यह है अग्रधावक, वह जो सबको पीछे छोड़ कर, सीधी आगे की ओर कूच करती है। यह है अग्नि। यही सभी अपूर्णताओं, अहंकारों और अज्ञान को भस्म कर देती है। यही हमारी अभीप्सा, पवित्रता को जन्म देती है, यही हमें अपनी तुच्छता से ऊपर उठाती है और 'परम' की पूर्ण प्रदीप्ति तक पहुँचा देती है। व्यक्ति अपने सभी दोषों, क्षुद्रताओं तथा अहम्मन्यताओं को इस ज्वाला में झोंक सकता है, और जितना वह इन सबको स्वाहा करता है उतनी ज़्यादा यह लौ भड़कती है। इसका कोई अन्त नहीं है, उसी तरह जैसे अभीप्सा का कोई अन्त नहीं है।

जब तक व्यक्ति अभीप्सा करता है, यह अग्नि जलती रहती है।...

यह अग्नि है, यह वह है जो अभीप्सा करती, शुद्ध करती और रूपान्तरित करती है।

यह सूर्य है, यह वह है जो उस सबको जला देता है जो देर लगाता है,

परेशान करता है और व्यक्ति को नीचे खींचता है। यह वह है जो तुम्हें सामने बढ़ाता है, अच्छाई दिखलाता और बुराई को निकाल दूर फेंक देता है। यह संसार की सबसे विनाशक ज्वाला है, जो कुछ इसके रास्ते में बाधा बन खड़े होने की कोशिश करता है उस सबको यह नष्ट-विनष्ट कर देती है।

यह है 'भागवत प्रेम' की ज्वाला। यही तुम्हें निष्कपट, ऋजु बनाती है, तुम्हारे अन्दर प्रगति का उत्साह जगाती है; तपस्या और अध्यवसाय इसके गुण हैं। यह शुभचिन्तक लौ है; इसके बिना व्यक्ति आगे नहीं बढ़ सकता। इस लौ के साथ भगवान् की सहायता आरम्भ हो जाती है। जब व्यक्ति इसके बारे में सचेतन हो जाता है तब कोई अनिष्ट उसके साथ नहीं घट सकता।

१९ जनवरी १९६०

भगवान् के साथ एक होने की अभीप्सा

सुदिनम्!

सुदिनम्, मधुर माँ!

... क्या तुम्हें मालूम है मेरे बच्चे कि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ है, हमेशा अपने लक्ष्य के प्रति सचेतन बने रहना। तुम्हारा जो भी लक्ष्य हो, तुम्हें हर पल अपनी अभीप्सा को याद रखना चाहिये। अभीप्सा करते रहो और अपने लक्ष्य को मत भूलो। हमेशा वह पथ तुम्हारी दृष्टि के सम्मुख होना चाहिये, कोई विचलन न हो: "मेरे अन्दर अपना लक्ष्य सिद्ध करने का संकल्प है, भगवान् के साथ एक होने की अभीप्सा है।" यह संकल्प और यह अभीप्सा तुम्हारी चेतना से कभी न मिटने पायें। हमेशा सचेतन बने रहना, इस एकमात्र चीज़ के बारे में सचेतन! क्षण-भर के लिए भी इसे न भूलना... महत्त्वपूर्ण बात बस यही है कि हमेशा यह अभीप्सा तुम्हारे साथ-साथ, तुम्हारे सामने चलती रहे। अगर तुम इसे अपनी चेतना में बनाये रखो तो तुम जो कुछ भी करो—मैं ज़ोर दे रही हूँ कि अगर यह तुम्हारे सामने हो—तो छोटी-छोटी भटकनों का कोई महत्त्व नहीं।

स्वाभाविक है कि जीवन कभी सीधी दिशा में नहीं चलता; हमेशा उतार-चढ़ाव, अँधेरे-उजाले आते ही रहते हैं। वह अच्छाई और बुराई के बीच झूलता रहता है; कभी पथ पर प्रकाश छाया रहता है और व्यक्ति प्रसन्न

चाल से आगे बढ़ता है तो कभी इससे एकदम उलटा ही घटता है। लेकिन जब व्यक्ति के अन्दर अपने लक्ष्य को चरितार्थ करने की संकल्प-शक्ति होती है और वह अभीप्सा, जो कभी नहीं डगमगाती, साये की तरह उसके साथ-साथ लगी रहती है, तब पथ की भटकनों से इतना फ़र्क नहीं पड़ता, क्योंकि वह जल्दी ही अपनी भूल सुधार कर दोबारा ठीक रास्ता ले लेता है।

भले व्यक्ति किसी आकर्षण के कारण भटक जाये, यहाँ एक क़दम चल दे, वहाँ बहक कर निकल जाये, यानी कोई चीज़ तुम्हें कुछ समय के लिए पकड़ ले और तुम उसकी तरफ़ खिंचे चले जाओ—फिर भी तब तक चिन्ता की कोई बात नहीं है जब तक कि इन सभी चीज़ों के पीछे छिपे अपने आन्तरिक पथ-प्रदर्शक के बारे में तुम सतत रूप से सचेतन बने रहो। तुम्हें हमेशा अपने सामने बिछे रास्ते के बारे में सचेतन रहना चाहिये *(संकेत)* सभी परिस्थितियों में, भले तुम कुछ भी क्यों न कर रहे हो, पथ को कभी अपनी आँखों से ओझल मत होने दो। स्वभावतः लड़खड़ाहटें आयेंगी ही, लेकिन उस केन्द्रीय चेतना में कोई उतार-चढ़ाव नहीं आयेंगे जो हमेशा टकटकी बाँधे अपने लक्ष्य की ओर ताकती ही रहती है। हम चलते हैं, हम गिरते हैं... लेकिन फिर सँभल कर सीधे रास्ते पर लौट आते हैं। भूल सुधार कर ही हम आगे बढ़ते हैं।

इसीलिए मैं कहती हूँ कि जब व्यक्ति के अन्दर सच्ची चेतना प्रतिष्ठित हो जाती है तब बाहरी घटनाओं का कोई मूल्य नहीं रहता। बस सचेतन बनो, सचेतन बनो, प्रभु के साथ एक हो जाने की अभीप्सा के बारे में सचेतन बनो...

१५ मई १९६६

सर्प—क्रमविकास का प्रतीक

(एक दिन मोना दा ने आते ही साँपों के बारे में चर्चा छेड़ दी।)

मधुर माँ, आज आप मुझे साँपों के बारे में कुछ बतलाइये।

सर्प... साँप क्रमविकास का प्रतीक है। जिस तरह साँप कुण्डली मार कर बैठ जाता है, क्रमविकास भी उसी तरह कुण्डली मारे रहता है और धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। सर्प शिव की शक्ति है जो प्रगति तथा क्रमविकास को चलाते हैं।

लेकिन माँ, शिवजी तो संसार को दोबारा गढ़ने के लिए उसका विनाश करते हैं।

नहीं, वे रुद्र हैं जो विनाश करते हैं, शिव नहीं। शिव रूपान्तर के देवता हैं, जो तेज़ी से विकास लाते हैं। यह धरती पर उस प्राण-शक्ति का प्रतीक है जो हर चीज़ को प्रेरित और ऊर्जित करती है—जो मनुष्य से आगे छलाँग लगवाती है... सर्प इसी प्रगति का प्रतीक है।

भव्य और प्रतापी, अपने फणों को ऊपर उठाये हुए, कोबरा कितना सुन्दर, कितना शानदार लगता है। वह कोई हानि नहीं पहुँचाता—लेकिन मनुष्य ने इन सरीसृपों को अपना शत्रु बना लिया है। उसने सब कुछ बिगाड़ दिया है। पशुओं और अपने बीच के सम्बन्धों को उसने ख़तम कर डाला —वह भी अपने लाभों के लिए! उसने जानवरों के साथ कभी भलाई नहीं बरती, पशुओं को कोई अधिकार दिये बिना, अपने स्वार्थी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, पशुओं का नाश करने के लिए उसने कितने ही आविष्कार कर लिये! संसार में उसने उन मूक प्राणियों को स्वतन्त्रतापूर्वक जीने के लिए थोड़ी-सी भी जगह नहीं दी। मनुष्य के साथ पारस्परिक सामञ्जस्य में रहने की कितनी चाह रखता था पशु; उसके बदले में मनुष्य ने उन्हें अपना शत्रु बना लिया, सिवाय कुछ के, जिन्हें उसने पालतू बना लिया, वह भी अपनी सेवा करवाने के लिए।

वास्तव में कुत्ते और भेड़िये में प्रायः कोई भेद नहीं है। लेकिन एक के साथ मनुष्य दोस्त का व्यवहार करता है, दूसरे के साथ दुश्मन का। यहाँ तक कि अगर मनुष्यों ने शेर और बाघ को भी थोड़ी जगह दी होती तो वे इतने भयंकर नहीं होते। ये सभी पशु मनुष्य का सम्मान करते हैं, लेकिन मनुष्य ने जानवरों के प्रति अपना सम्मान नहीं दिखलाया। इसी कारण वह पशु से भय खाता है और अब वे उसके शत्रु बन गये हैं। यह तो उसका सौभाग्य है कि हाथी जैसे विशालकाय जानवर को उसने पालतू बना लिया, वरना क्या होता उसका? वह बलशाली जाति सब कुछ तहस-नहस कर देती। एक उन्मत्त हाथी जब जंगल में दौड़ता है तो बड़े-बड़े पेड़ों तक को अपने पैरों तले रौंदता चला जाता है। जानते हो, पशु और मनुष्य के बीच का यह परस्पर भय पूरी तरह से मानव की देन है—उसने उन्हें उनका

पावना कभी नहीं दिया।

माँ, साँपों के विरुद्ध क्या आपके बच्चों को विशेष सुरक्षा प्रदान की जाती है? मैंने इस तरह की बात कभी सुनी थी।

हाँ, मेरे वे सभी बच्चे जो साँप या दूसरे जानवरों से नहीं डरते, हमेशा मेरी सुरक्षा में रहते हैं। तुम कह सकते हो, हाँ, उन्हें मेरी सुरक्षा प्रदान की जाती है। क्या तुम नहीं जानते? यह तो पुरानी कहानी है। यह मेरे साथ बहुत समय पहले घटी थी, जब मैं तेमसेम में तेओं के घर रहा करती थी।

उनके यहाँ एक बहुत बड़ा बग़ीचा था, उसमें कई सारे जैतून के पेड़ थे और एक बड़ी-सी झील भी थी। मैं रोज़ वहाँ ध्यान किया करती थी। ऐसा कहा जाता था कि वहाँ बड़े-बड़े साँप बसा करते थे। वे कोबरा की तरह थे, लेकिन सिर उनका ज़्यादा बड़ा था और उनके माथे पर 'चश्मे' की तरह निशान नहीं थे। जैतून के उन पेड़ों में से एक सूख गया था और उसके तने में एक गड्ढा था और इन साँपों का एक परिवार उसमें रहा करता था। इसी के ठीक सामने झील थी।

तो, एक दिन, दोपहर के खाने के बाद, रोज़ की तरह मैं बाहर ध्यान करने के लिए आयी। बहुत गर्मी थी, तुम अन्दाज़ नहीं लगा पाओगे कितना गर्म था वह दिन! लेकिन मैं झील के सामने, पेड़ के नीचे, ध्यान में बैठ गयी। मैं साँपों की कहानियों के बारे में कुछ नहीं जानती थी। अचानक, ध्यान के समय, मैंने किसी की उपस्थिति का अनुभव किया और उसने जैसे मुझे ध्यान से खींच कर बाहर निकाल दिया।

मैंने अपनी आँखें खोलीं और क्या देखती हूँ मैं? एक विशाल, क्रुद्ध सर्प मेरे सामने फुफकार रहा था। वह आधा कुण्डली मारे बैठा था, उन्नत सिर, बहुत ही कुपित दीख रहा था वह। उसे मेरा वहाँ बैठना बिलकुल नहीं गवारा। मुझे पता नहीं था कि उसकी बाँबी वहीं थी! फिर मैंने किया यह कि यह दिखलाते हुए कि मैं ज़रा भी भयभीत नहीं हूँ, सीधा उसकी आँखों में आँखें डाल कर उसे घूरने लगी, तुम जानते ही हो कि भय के प्रकम्पनों को जानवर एकदम से पकड़ लेते हैं और तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं। मैं उसे घूरती रही। सचमुच मेरे अन्दर कोई डर नहीं था, लेकिन वह

साँप इतना क्रुद्ध था कि वह मुझ पर हमला बोलना चाहता था। मैं पैर लम्बे करके बैठी थी, ज़रा भी घबराये बिना, मैंने अपने पैर एक के बाद एक समेट लिये, सारे समय मैं उसे टकटकी बाँधे देखती रही। जानते हो, उन दिनों मैं पूरी तरह से गुह्यविद्या में निमग्न थी, मैं उसका बहुत अभ्यास किया करती थी। तो, सम्मोहक दृष्टि से उसे एकटक देखते हुए मैं उठी और मैंने जान-बूझकर एक क़दम उसकी ओर बढ़ाया, फिर दूसरा, सारे समय मैं उसे देखती रही; फिर अपनी शक्ति को एकाग्र कर मैंने उससे कहा, "यहाँ से चले जाओ!" स्वाभाविक रूप से, बिना बोले। मैं उसे घूरे जा रही थी और मैंने अपनी दृष्टि से उससे कहा, "चले जाओ, यहाँ से चले जाओ!" और जब वह और प्रतिरोध न कर सका तो उसने अपना फण एकदम से नीचे गिरा दिया, *प्लम्ब*! और वह *भगा*! वह इस तरह *(संकेत)*, एकदम तेज़ी से निकल भागा।

मैं तुम्हें बता रही हूँ, वह बहुत बड़ा साँप था, और, हे भगवान्! जब मैंने उस पर टकटकी बाँधी तो वह कितना रुष्ट हो गया था! मैंने वापस आकर यह सब तेओं दम्पति को सुनाया। जानते हो, मादाम तेओं ने मुझसे क्या कहा? "तुमने उसे एक प्याला दूध क्यों नहीं दे दिया? तब वह नाराज़ नहीं होता।" भला उस क्षण मैं दूध कहाँ से पाती? मैं सही-सलामत लौट आयी। अन्त भला तो सब भला!

फिर उन्होंने मुझे सुनाया कि जैतून के पेड़ की उस बाँबी में इन साँपों का परिवार बहुत समय से रह रहा है। तब मैं समझी कि वह साँप इतना क्रुद्ध क्यों था—स्वाभाविक है, मैं उसके घर के सामने बैठी हुई थी!

जानते हो, बाद में क्या हुआ? रात को, जब मैं सो रही थी, सर्पराज मुझसे मिलने आये। सुन्दर मुकुटधारी वह एक भव्य कोबरा था। अपनी राजसिक गति के साथ वह सर्वांगसुन्दर जान पड़ता था।

माँ, वह किस रूप में आया? सर्प या...

निस्सन्देह, सर्प के रूप में, और वह कोबरा था।

और उसने मुझसे कहा, "मैं आपसे एक सन्धि करने आया हूँ।"

मैंने पूछा, "किस तरह की सन्धि?" उसने जवाब दिया, "अगर आप किसी भी साँप को नुक़सान न पहुँचायें और न ही उन्हें मार डालें, तो वे

भी आप पर कभी हमला नहीं करेंगे, आपको कभी हानि नहीं पहुँचायेंगे।"

मुझे पता था कि वे मुझे कभी नुक़सान नहीं पहुँचा पायेंगे, लेकिन मैं इस बात की गारंटी नहीं ले सकती थी कि मेरे बच्चे भी भयभीत होकर कभी उन्हें हानि न पहुँचायेंगे...

मैंने देखा कि अगर मेरे बच्चों को सुरक्षा न मिले तो कोई फ़ायदा नहीं होगा। तो मैंने उससे कहा कि मैं ऐसी कोई सन्धि नहीं कर पाऊँगी जहाँ मेरे बच्चों को सुरक्षा नहीं मिल पायेगी। कौन जानता है कि कभी कोई बच्चा इस नियम का उल्लंघन कर बैठे... नहीं, मैं इस समझौते पर राज़ी नहीं हो सकती।

मैंने कहा, "लेकिन प्रतिज्ञा कीजिये कि मेरे बच्चे हमेशा सुरक्षा के घेरे में रहेंगे।"

यह बात उसे बहुत जँची नहीं और वह कुछ नाख़ुश-सा चला गया।

मैं केवल अपने लिए सन्धि नहीं करना चाहती थी।

मैं जानती हूँ कि वे सर्प मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते...

लेकिन, मुझ पर अपने बच्चों की भी ज़िम्मेवारी है।

तो फिर माँ, हम पूरी तरह से सुरक्षित नहीं हैं?

निश्चित रूप से तुम्हारे साथ मेरी पूर्ण सुरक्षा है—शर्त है कि कभी डरना मत। जहाँ कहीं डर हो मैं काम नहीं कर सकती। तब काम करना बहुत कठिन हो जाता है। पशुओं के अन्दर मनुष्यों के लिए बहुत मान-सम्मान होता है क्योंकि उनके अन्दर महान् शक्ति होती है; लेकिन जैसे ही मनुष्य डर महसूस करता है, वे बहुत जल्दी ताड़ जाते हैं और तुरन्त प्रहार कर बैठते हैं... तुम्हें पता है, पशु बहुत ही संवेदनशील होता है, जैसे ही तुम डरो, वह झट उन स्पन्दनों को पकड़ लेता है।

उस क्षण, साँप के सामने, अगर मैं डर गयी होती तो निश्चित है कि साँप मुझे डस लेता। लेकिन मैं डटी रही और मैंने भय को अपने पास फटकने नहीं दिया, वह फ़ौरन चला गया। बहरहाल, मुझे मालूम है कि वे मुझे कभी भी हानि नहीं पहुँचा सकते।

६ नवम्बर १९६६

कब सीखेगा मनुष्य?

श्रीमाँ ने मुझे एक पुष्प दिया, जिसका उन्होंने प्रतीकात्मक नाम 'चैत्य शान्ति' दिया है। (हिन्दी में यह करैया और संस्कृत में गिरिमल्लिका के नाम से जाना जाता है।)

(माँ मुझसे फूल सूँघने को कहती हैं)

देख रहे हो, कितना सुन्दर है यह; कितनी भीनी-भीनी ख़ुशबू होती है इसकी।

जी माँ, कितना परिष्कृत और मनोहर है यह।

जानते हो बच्चे, फूल नीरव तथा उदार भंगिमा के साथ बहुत ही गहरा प्रेम और शान्त मधुरिमा फैलाते हैं। इसकी तुलना नहीं की जा सकती। प्रकृति की यही गति दुःख-दर्द से जीर्ण-शीर्ण जगत् में सन्तुलन लाती है। मनुष्य अगर कोशिश करे तो देखेगा कि निश्चित रूप से भौतिक स्तर पर फूल कितना सामञ्जस्य रखते हैं। यही चीज़ विपरीत गति को समाप्त कर धरती पर एक सन्तुलन लाती है और वही सामञ्जस्य और सन्तुलन मानव जीवन को सार्थक बनाते हैं... वास्तव में पुष्प मनुष्य से कहीं अधिक महान् हैं, वे होते हैं छोटे, लेकिन अपने लिए कुछ भी बटोर कर नहीं रखते; बस देते हैं, देते हैं, देते ही चले जाते हैं, उधर आदमी बस लेता है, लेता है, लेता ही चला जाता है! औरों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ना चाहता। मानव अपने अहंकार को ही धुरी बना लेता है, और सबसे बुरी बात यह है कि वह दूसरों से चाहे जितना भी पा ले कभी, कभी सन्तुष्ट नहीं होता।

उसके अन्दर कृतज्ञता की भावना की कमी है। वह सोचता है कि क्रमविकास की सीढ़ी पर वह ऊपर खड़ा है, इसलिए सारी धरती पर उसी का अधिकार है। वाहियात!

चूँकि 'प्रकृति' स्वयं को इतने सहज रूप में दे देती है और मनुष्य की इस विपरीत गति को समाप्त कर देती है कि धरती अभी तक जीने-लायक बनी हुई है।

मन के साथ-साथ आयी अधिकार की भावना, 'मैं' की अहंकारिक भावना जो मनुष्य को नीचे, बहुत नीचे खींच ले जाती और उसे तुच्छ

और स्वार्थी बना देती है। उसकी शिक्षा, उसकी खोजें, उसकी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, सभी लाभ जो उसकी पहुँच में होते हैं—इन सबने उसे अमीर, आरामदेह, ख़तरों से सुरक्षित रखा है, लेकिन इसी चीज़ ने उसे दम्भी, अहंकारी और विकृत भी बना डाला। बहरहाल, उसके इतने सारे अन्वेषणों ने उसे मानव के सच्चे अर्थ में मानव नहीं बनाया। कितनी दरिद्र है मनुष्य की यह अवस्था! भगवान् ने ऐसा कभी नहीं चाहा होगा! इतना विकृत है वह कि औरों को धोखा देने में मज़ा लेता है, इस बात की उसे जानकारी तक नहीं होती, क्योंकि वह ख़ुद को ही धोखा देता रहता है। कितनी दयनीय है मनुष्य की अवस्था! अपनी इन तुच्छ गतियों से ऊपर उठना कब सीखेगा वह?

'पवित्रता'

(श्रीमाँ 'पवित्रता' (सफ़ेद जूही) का फूल सूँघती हैं।)

ओह, 'पवित्रता'... कितनी मीठी है इसकी सुगन्ध!

'भागवत उपस्थिति' की पवित्रता—तुम्हें पता है, यह एक तरह का संवेदन होता है, ऐसा संवेदन जिसे उसकी निकटता, उसके प्रभाव और निश्चित रूप से उसके सम्पर्क द्वारा अनुभव किया जा सकता है। और यह सबसे अधिक प्रभावी तब होता है जब तुम पवित्र हो: अपने विचारों में पवित्र, अपनी भावनाओं में, क्रियाओं में, अपनी कामनाओं में, अपनी अभीप्साओं में पवित्र, यहाँ तक कि तुम्हारे ज्ञान में भी पवित्रता हो, तुम्हारी आदतों में शुद्धता हो—समग्रता में पवित्रता। तुम्हारी सत्ता का प्रत्येक भाग शुद्ध और साफ़ हो, जिसमें अन्धकार की कोई झलक, परछाईं का कोई धब्बा न हो, वह हो बिल्लौर-जैसा, जिसके आर-पार विकृत हुए बिना प्रकाश पहुँच जाये।

तुम्हारे अन्दर होनी चाहिये पवित्रता की वह पारस-मणि जिसके सम्पर्क में आने से सभी कुछ शुद्ध हो जाये। इसके लिए तुम्हें अपने अन्तर में वह प्रकाश पाना होगा जो तुम्हारे अन्दर गहरे बसता है और जिसमें सब कुछ को खरा सोना बनाने की क्षमता है। तुम्हें अपने अन्दर का वह हिस्सा बाहर की ओर खुला रखना चाहिये जो पवित्र करने वाला प्रकाश फैलाये; तब,

उदाहरण के लिए, कोई मामूली विचार, कोई भी कामना, कोई अन्धकारमय चीज़ या कोई ऐसा आवेश जिसे दबाना बहुत मुश्किल हो, उसे तुम उस प्रकाश के सामने कर दो, जैसे ही शुद्ध करने वाला वह प्रकाश उसे छूकर उस विचार, उस कामना या आवेश के अन्दर गहरे प्रवेश कर जायेगा वैसे ही वह उसे तुरन्त रूपान्तरित कर देगा, उसे पवित्र तथा उदात्त बना देगा। ऐसा सचमुच होता है, वास्तव में हर एक चीज़ अपने सारतत्त्व में पवित्रता की इस चिनगारी को लिये रहती है।

तब स्वयं शरीर, वह तत्त्व जिससे वह बना है, पवित्र, प्रदीप्त और पारदर्शक हो जाता है, अपने प्रभाव से, अपने सम्पर्क से वह अपनी शुद्धता चारों ओर बिखेरता है। शरीर में तुम्हें इसी शुद्धता और पवित्रता को उतारना है, सत्ता में इसी को प्रतिष्ठित करना है, ताकि वह तुम्हारे स्वभाव को, तुम्हारी मनोवृत्ति को और तुम्हारी इन्द्रियों को प्रकाश के साँचे में ढाल सके।

प्रार्थना करो कि तुम्हारी सभी गतियों में, सभी क्रियाओं में और सभी विचारों में यह पवित्रता अभिव्यक्त होकर अपना ठप्पा लगा दे। पवित्र... अपनी पवित्रता में पवित्र, तब मिथ्यात्व या अन्धकार की एक हलकी-सी झलक तक नहीं बची रहती। जब व्यक्ति पूरी तरह से शुद्ध हो जाता है तब वह सच्चा-सरल, स्पष्टवादी और ऋजु बन जाता है, उसके अन्दर भय का नामोनिशान नहीं रहता क्योंकि तब न उसके अन्दर कोई मरोड़ रहती है न ही कोई प्रतिक्रियाएँ।

हाँ, पवित्र होने का अर्थ है मुक्त होना, सभी बाधाओं से मुक्त, सभी पेचीदगियों से मुक्त, सभी दुःख-दर्द और कष्टों से मुक्त, सभी द्वन्द्वों से मुक्त।

हाँ, श्रेष्ठ स्वतन्त्रता में साँस लेने के लिए शुद्ध बनो, पवित्र बनो।

पवित्र होना 'भगवान्' होना है।

ऐसा हो कि यह भागवत पवित्रता तुम्हारे अन्दर शुद्धता की बाढ़ ले आये, आनन्दविभोर तुम, अपने जीवन में चमक उठो। ऐसा हो कि यह स्वयं को पूर्ण प्रेम में, पूर्ण समझ के ज्ञान में प्रकट करे और जीवन में सौन्दर्य और सामञ्जस्य में अभिव्यक्त हो—हीरे की तरह शुद्ध जो अन्दर से अपना प्रकाश बिखेरता है, उस विचार की तरह शुद्ध जो प्रदीप्त करता है, अपने शरीर के तत्त्व में शुद्ध ताकि वह रूपान्तरकारी प्रकाश को अपने अन्दर धारण कर सके। एक ऐसी पवित्र और चरम अवस्था में रहो जो

भव्य उपस्थिति के रहस्य उजागर करती है। तुम्हें यही बनने की अभीप्सा करनी चाहिये। तो अब... पूरे जीवन का कार्य है यह। आसान नहीं है, लेकिन करने की तकलीफ़ उठाने-लायक ज़रूर है।

तो अब हम विदा लेते हैं मेरे बच्चे। पुनर्दर्शनाय।

पुनर्दर्शनाय मधुर माँ।

१६ अप्रैल १९५९

वर्षा

(आश्रम के शारीरिक शिक्षण-विभाग के आबाल-वृद्ध अपना वार्षिक कार्यक्रम २ दिसम्बर को प्रस्तुत करते हैं। पॉण्डिचेरी में नवम्बर-दिसम्बर बारिश के महीने हैं, कई-कई दिनों तक सूरज देवता के दर्शन ही नहीं होते, वार्षिक कार्यक्रम के अभ्यासों के दौरान भी मुश्किलें आती हैं। मोना दा हर साल श्रीमाँ को कार्यक्रम के अभ्यास का लेखा-जोखा सुनाते थे। एक साल बारिश के बारे में चर्चा चल पड़ी।)

श्रीमाँ कहती हैं : इस बरसात का तो अन्त ही नहीं दीखता!

लगातार, लगातार बारिश हो रही है।... मेरे ख़याल से यह बहुत ज़रूरी है। प्रकृति अपना काम हमसे ज़्यादा अच्छी तरह जानती है। इस बारिश पर टीका-टिप्पणी करने की हमें ज़रूरत नहीं क्योंकि प्रकृति वनस्पति तथा पशु-जगत् में सन्तुलन लाने के लिए पृथ्वी की आवश्यकता और अनिवार्यता के हिसाब से कार्य करती है। अगर कहीं कमी या अभाव हो तो वह अच्छी तरह उसे भरना और सन्तुलन लाना जानती है, उसके तरीक़े अद्‌भुत होते हैं और वे हमें सचमुच ठिठका देते हैं, इसीलिए कोई भी टिप्पणी करने के पहले हमें परिस्थिति को जानना चाहिये। *(दिसम्बर के अभ्यास में बाधा आने पर सभी बारिश को दोषी ठहराते थे, श्रीमाँ इसी के सन्दर्भ में कह रही थीं।)* प्रकृति को चीज़ों का, उन्हें क्रियान्वित करने का पूरा-पूरा ज्ञान है... यह अद्‌भुत है।...

मुझे अपने जीवन की एक घटना याद है, उसे घटे एक ज़माना गुज़र गया, लेकिन मेरे दिमाग़ में वह इतनी साफ़ है मानों अभी हाल ही की हो। मुझे बुख़ार था और मैं बेचैनी का अनुभव कर रही थी, तो मैं ज़रा ताज़ी

हवा के लिए घर से बाहर, खेतों की ओर निकल गयी। अचानक घने बादल घिर आये, बारिश शुरू हो गयी, और मैं खुले मैदान में थी, अकेली, मेरे ऊपर था असीम आकाश, मेरे चारों तरफ़ था निस्सीम फैलाव! आसमान मानों फट पड़ा था। और उस बरसात में मैं एक छोटी, मस्त बच्ची की तरह कूद-फाँद रही थी, किलोल कर रही थी। मैं पूरी तरह से भीग चुकी थी, मेरे शरीर से पानी चू रहा था। मैं वहाँ वैसे ही रही ताकि वह बरसात मेरे सभी दोषों को, मेरे सभी दर्दों को पूरी तरह से धो डाले और मुझे अपनी शक्ति और ऊर्जा से सराबोर कर दे। उस समय मुझे ऐसा लगा मानों मेरे अन्दर एक तरह की शान्ति तथा मधुरिमा प्रवेश कर रही हों और तब मेरा शरीर एक अनजान हर्ष के साथ, भौतिक रूप से स्पन्दित हो रहा था। और मेरा बुख़ार, वह सारी बेचैनी इत्यादि, सब छूमन्तर हो गये, न केवल मैं स्वयं को सामान्य बल्कि ऊर्जा से भरपूर अनुभव कर रही थी। आधे घण्टे में मैं जान गयी कि बारिश क्या नहीं कर सकती। मेरे लिए वह सचमुच एक अनुभूति थी।

अगर मनुष्य अपने मन के हस्तक्षेप के बिना उन सभी चीज़ों का लाभ उठा सके जिन्हें प्रकृति हमें प्रदान करती है तो वह कितनी ही हानियों, कितनी ही चिन्ताओं से बच सकता है और समझदारी से भरा, सरल जीवन बिता सकता है। वह कभी फ़लानी तो कभी ढिमाकी चीज़ करने से घबराता है, वह अपनी मानसिक रचनाओं को तोड़ने पर आतंकित हो उठता है और अपनी आदतों और लीक-लीक चलते रहने वाले जीवन के सामने हमेशा घुटने टेके रहता है। अगर वह इस तरह के भयों से इतना भयभीत नहीं रहे—यह डर ही है जो उसे अपने शिकंजे में जकड़े रखता है—तो वह एक उदात्त और शालीन जीवन बिता सकता है। लेकिन... ज़्यादा अच्छा है कि हम उसकी दयनीय दशा और उसकी कमियों के बारे में अधिक कुछ न कहें!...

वर्षा 'कृपा' की तरह है जिसे भगवान् धरती को आशीर्वाद देने और पवित्र करने के लिए भेजते हैं। यही 'प्रकृति' और पशुओं को जीवन प्रदान करती है। इसके अन्दर शुद्ध करने की असाधारण शक्ति होती है। जब यह नीचे धरती पर उतरती है तब 'प्रकृति' को अनुप्राणित करती और उसे जीवन के हर्ष से भर देती है। कितनी विभिन्न विधियों द्वारा यह हमारी

सहायता करती है। जैसे ही पानी बरसता है, यह वातावरण को उन सभी नकारात्मक रचनाओं से शुद्ध कर देती है जिन्हें मनुष्य हवा में निरन्तर फेंकते रहते हैं और साथ ही उन सभी हानिकर शक्तियों को भी लील लेती है जो हमें नष्ट कर देना चाहती हैं। बारिश वातावरण को साफ़-सुथरा-निर्मल बना देती है, सभी अपवित्रताओं को समाप्त कर देती है।

वैसे वातावरण में ऐसी विरोधी शक्तियाँ रहती हैं जो पानी से भय खाती हैं; बारिश होती नहीं कि वे दुम दबा कर भाग खड़ी होती हैं, और अगर न भाग पायें तो गल जाती हैं। यही कारण है कि बारिश के बाद सारे वातावरण में एक तरह की शान्ति अवतरित हो जाती है। क्या तुमने कभी इसका अनुभव नहीं किया?

जी माँ, किया है, बहुत दिनों के बाद जब बरसात होती है तो हम एक तरह की ख़ुशी और शान्ति महसूस करते हैं।

हाँ, यही बात है। वह सारी धूल-मिट्टी हटा कर, धरती को साफ़ कर देती है। वह उसे शक्ति से भरा नया जीवन देती है। बारिश के बाद हम पेड़-पौधों को ताज़गी में नहाया देखते हैं, वे अधिक पनप उठते हैं। वह नहरों, खेतों, जंगलों में एक सञ्जीवनी ऊर्जा भर देती है। बारिश ही उन्हें उनकी ख़ुराक देती है। उसकी इस देन के लिए हमें हमेशा उसका आभारी होना चाहिये।

और मनुष्यों के लिए वर्षा एक कृपा है, आशीर्वाद है जो अपने साथ एक शान्ति, एक माधुर्य और पवित्र करने की एक शक्ति लाती है। वह अपनी अनुकम्पा और पवित्र करने की अपनी शक्ति द्वारा हमारी सभी अपूर्णताओं, हमारे मैल को धो देती है।

अगर हम सच्ची मनोवृत्ति के साथ अचञ्चल और शान्त रहना सीख लें तो देखेंगे कि वह हमें पवित्र कर देती और आन्तरिक शान्ति ले आती है, अगर हम बारिश में असीम आसमान के नीचे खड़े रह सकें तो पायेंगे कि न केवल वह हमें भला-चंगा कर देगी बल्कि हमारे अन्दर प्रचुर ऊर्जा और शक्ति का जमघट ले आयेगी।

हमें इसका कोई अन्दाज़ ही नहीं है कि बारिश कितने विविध तरीक़ों से हमारी मदद करती है। हमारे अन्दर ग़लत धारणाएँ होती हैं कि बारिश

में भीगो तो यह हो जायेगा, वह हो जायेगा, इत्यादि।

दरअसल अगर तुम्हारे अन्दर कोई डर न हो, कोई सिकुड़न, किसी तरह का कोई तनाव न हो, बारिश के प्रति कोई प्रतिरोध न हो... विचारों में भी नहीं... जैसे, "ओह! कहीं बीमार तो नहीं पड़ जाऊँगा मैं" अगर यह सब न हो तो तुम कभी बीमार नहीं पड़ोगे। तुम तरबतर हो सकते हो, लेकिन तुम्हें कुछ न होगा। क्योंकि भय ही सभी बीमारियों का कारण है। तुम्हें डरना नहीं चाहिये, घबराना नहीं चाहिये, तुम्हें न बेचैन होना चाहिये, न ही बारिश में कँपकँपी छूटने देनी चाहिये। तब तुम देखोगे कि जैसी अपेक्षा कर रहे थे वैसा कुछ नहीं हुआ। तो बात ऐसी है। 'प्रकृति' के रहस्यों के बारे में हम अपने अन्दर कई ग़लत विचारों को पालते रहते हैं।

जानते हो, अगर हम बारिश में खड़े होकर कहें: "हे ईश्वर! वर दे कि यह बरसात मुझे मेरे सभी दोषों से, सभी कष्टों से मुक्त कर दे और वर दे कि यह मुझे अपने माधुर्य, अपनी शान्ति और अपनी ऊर्जा से आपादमस्तक नहला दे।" अगर तुम यह प्रार्थना सच्चे मनोभाव, सद्भावना और सरल हृदय की निर्लिप्तता के साथ करो तो देखोगे कि तुम एकदम से एक अलग ही व्यक्ति बन कर उभर आये हो।

यह अद्भुत है! हम 'प्रकृति' द्वारा प्रदान की गयी सुन्दर वस्तुओं का उपयोग करना नहीं जानते। हम उनके लाभों को भूल कर, बिना जाने उनकी आलोचना करने, उनमें दोष निकालने में लगे रहते हैं। एक किसान कितनी बेसब्री से बारिश का इन्तज़ार करता है! और यहाँ, तीन-चार दिन लगातार बारिश हुई नहीं कि हम चिड़चिड़ाने लगते हैं। कैसी बचकानी चीज़ है यह! हाँ, बारिश छोटी-मोटी असुविधाएँ तो पैदा करती है, लेकिन उससे क्या? व्यक्ति को समायोजन करना चाहिये। कोई बाढ़ या भीषण तूफ़ान तो नहीं आ रहा न! ज़रा ज़्यादा बारिश हुई नहीं कि सबके चेहरे लटक जाते हैं, तुम अपने-आपको इतना खोया-खोया क्यों महसूस करते हो भला? मज़े लो बारिश के!...

लेकिन मैं कहती हूँ कि मेरे लिए वह बारिश में भीगना बहुत ही ठोस और स्पष्ट अनुभव था, बारिश ने मुझे मानों पुनर्जन्म दिया, एक आध्यात्मिक उद्घाटन दिया। भौतिक रूप में उसने मुझे मेरा स्वास्थ्य और आध्यात्मिक रूप में एक नूतन जीवन प्रदान किया।

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

फ़रवरी

१. शुभचिन्तक बनो, तुम सब कष्टों से मुक्ति पा लोगे, सदा सन्तुष्ट और प्रसन्न रहो और तुम अपनी शान्त प्रसन्नता को चारों ओर फैला दोगे।

२. सदा दयालु बनो, कड़वी आलोचना से बाहर निकल आओ, सब वस्तुओं में बुराई को न देखो, कुछ और न देख कर अपने-आपको हठपूर्वक केवल भागवत कृपा की महान् और करुणामयी उपस्थिति को ही देखने को विवश करो और तब तुम देखोगे कि अचञ्चल आनन्द का, शान्त विश्वास और ज्योतिपूर्ण आशा का वायुमण्डल तुम्हारे अन्दर ही नहीं बल्कि तुम्हारे चारों ओर भी अधिकाधिक व्याप रहा है। तब तुम अपने-आपको केवल शान्त और प्रसन्न ही नहीं अनुभव करोगे, बल्कि तुम्हारे शरीर के बहुत-से विकार भी दूर हो जायेंगे।

३. रुग्णावस्था में भागवत शान्ति को नीचे उतारने की कोशिश करना न भूलो। क्योंकि कोई भी बीमारी प्रभु की शान्ति का प्रतिरोध नहीं कर सकती, यहाँ तक कि स्मरण करने और कोशिश करने से भी आराम मिलता है।

४. धीरता और सहनशीलता जितनी अधिक होंगी, भागवत शक्ति और भागवत प्रेम उतने ही अधिक हमारे साथ होंगे और विजय का आनन्द भी उतना ही अधिक होगा।

५. प्र. वह कौन-सी वस्तु है जिसे आप 'बाह्य सत्ता में समता का आधार' कहती हैं?

उ. वह है अच्छा स्वास्थ्य, सुदृढ़ और सन्तुलित शरीर; जब तुम्हारी स्नायुएँ एक छोटी बच्ची की तरह नहीं होतीं जो ज़रा-सी बात से डोल जाती हैं, जब तुम अच्छी नींद लेते हो और अच्छा खाना खाते हो—जब तुम अत्यन्त शान्त, सन्तुलित और स्थिर होते हो तो तुम्हारा आधार सुदृढ़ होता है और तुम बहुत-सी शक्तियाँ ग्रहण कर सकते हो।

६. इस बात की परम आवश्यकता है कि व्यक्ति जो कुछ करे उसे पूरी

सच्चाई, पूरी ईमानदारी और कार्य के गौरव की भावना के साथ करे ताकि जैसा उसे होना चाहिये वैसा किया जा सके।

७. अपने काम में जब तुम यह देखो कि कोई वस्तु तुम्हें बाहर से तंग कर रही है तो अपने अन्दर झाँको और तुम पाओगे कि उससे मिलती-जुलती कठिनाई तुम्हारे अपने अन्दर है। अपने-आपको बदल लो और बाहर की परिस्थितियाँ बदल जायेंगी।

८. कर्मों में पूर्णता के लिए अभीप्सा ही सच्ची आध्यात्मिकता है।

९. नियमित हो सकने की क्षमता एक बहुत बड़ी शक्ति है—इससे व्यक्ति अपने समय का और अपनी गतिविधियों का स्वामी बन जाता है।

१०. यह बिलकुल सच है कि भौतिक वस्तुओं में एक चेतना होती है जो सार-सँभाल का अनुभव करती एवं उसका उत्तर देती है और लापरवाह स्पर्श या रूखे व्यवहार को झट महसूस करती है। इस बात को जानना तथा महसूस करना और उनके साथ सावधानी बरतना सीखना चेतना की एक महान् प्रगति है।

११. संकल्प का मतलब है, इच्छा-शक्ति का ऐसा प्रयास कि निश्चित समय के अन्दर काम पूरा हो जाये। यह कोई बन्धनकारी "प्रतिज्ञा" नहीं है कि उस समय तक काम पूरा हो ही जायेगा। यदि वह पूरा न भी हो पाये तो अपना प्रयत्न ऐसे ही जारी रखना चाहिये जैसे कोई तारीख़ निश्चित की ही न गयी हो; नहीं तो तुम हतोत्साह हो जाते हो। लेकिन अपने संकल्प की लौ को कभी तुम्हें मद्धिम न होने देना चाहिये।

१२. शान्ति के साथ अपने मार्ग पर चलते जाना चाहिये। यदि उसमें कहीं कोई कठिनाई या विफलता आती है, यदि वह तुम्हारे अपने दोष के कारण न हो तो तुम्हें परेशान होने की ज़रूरत नहीं। तुम्हारे कार्य का नियम होना चाहिये शक्ति, अचल स्थिरता और अचञ्चलता और साथ ही जिन चीज़ों के साथ तुम्हें व्यवहार करना पड़ता है उन सबके साथ सीधा और सरल व्यवहार।

१३. हमेशा त्रुटियों और ग़लत प्रवृत्तियों को ही देखते रहने से अवसाद आता है और श्रद्धा की हिम्मत टूट जाती है। अभी के अँधेरे की ओर कम देखो, अपनी आँखें ज़्यादातर आने वाले प्रकाश की ओर रखो। श्रद्धा, प्रसन्नता, अन्तिम विजय में विश्वास, ये चीज़ें हैं जो

सहायता देती हैं और प्रगति को ज़्यादा आसान और तेज़ बनाती हैं। तुम्हें जो अच्छी अनुभूतियाँ होती हैं उन्हें ज़्यादा महत्त्व दो। इस तरह की अनुभूति भूलों और असफलताओं से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।

१४. अभीप्सा हमेशा करो परन्तु शान्ति के साथ, अपने-आपको बड़ी सरलता से पूरी तरह भगवान् की ओर खोलते हुए अभीप्सा करो।

१५. हर बात के लिए, एकदम भौतिक वस्तुओं के लिए भी भगवान् पर भरोसा और श्रद्धा रखो। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

१६. पूर्णयोग में साधना और बाहरी जीवन में कोई फ़र्क नहीं है। दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षण सत्य को खोजना और उस पर आचरण करना चाहिये।

१७. जो लोग मिथ्या विचार करते हैं, वे मिथ्यात्व और दुर्गति में ही रहेंगे। मिथ्या चिन्तन से निकल आओ तो तुम दुःख-दर्द से बच जाओगे।

१८. भागवत उपस्थिति ही जीवन को मूल्य देती है। वह उपस्थिति समस्त शान्ति, समस्त आनन्द और सारी सुरक्षा का स्रोत है। अपने अन्दर इस उपस्थिति को खोज लो और सब कठिनाइयाँ ग़ायब हो जायेंगी।

१९. बहरहाल, एक चीज़ के बारे में विश्वास रखो—तुम्हारा भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है। तुम जैसा व्यक्ति बनना चाहते हो वही बनोगे। तुम्हारे आदर्श और तुम्हारी अभीप्सा की ऊँचाई के अनुपात में तुम्हारी सिद्धि भी उतनी ही ऊँची होगी। लेकिन तुम्हें दृढ़ निश्चय रखना चाहिये और अपने जीवन के सच्चे लक्ष्य को कभी न भूलना चाहिये।

२०. मन की **नीरव-निश्चलता** का अभ्यास करो, यह समझने की शक्ति देती है।

मन अपनी पूरी उपयोगिता तब पाता है जब यह जान लेता है कि उच्चतर प्रेरणा को कैसे सुना जाये।

२१. जब हम बाहर से, यानी मनुष्यों से सराहना पाने की आशा छोड़ देते हैं तब हमारे पास शिकायत करने का कोई कारण नहीं रह जाता। वे सराहना करें तो उनके लिए बहुत अच्छा है। वे सराहना न करें, कोई हर्ज़ नहीं। यह उनका निजी दृष्टिकोण है। हम उन्हें ख़ुश करने के लिए कार्य नहीं करते, हम चीज़ें इसलिए करते हैं क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि यह करना चाहिये।

२२. जो लोग भगवत्कृपा और सहायता के लिए अभीप्सा करते हैं उनके लिए कृपा और सहायता हमेशा प्रस्तुत रहती हैं और अगर उन्हें श्रद्धा और विश्वास के साथ लिया जाये तो उनकी शक्ति असीम है।

२३. किसी चीज़ के लिए इच्छा न करो, किसी चीज़ के लिए कभी दावा न करो। हर क्षण अपनी सामर्थ्य के अनुसार ऊँचे-से-ऊँचे स्तर पर रहो।

२४. विश्व के आश्चर्यों का कहीं अन्त नहीं है। हम अपने छोटे-से अहंकार की सीमाओं से जितना अधिक मुक्त होते चलें, उतना ही अधिक ये आश्चर्य अपने-आपको हमारे आगे प्रकट करेंगे।

२५. सच कहा जाये तो यदि तुम एक क्षण, एक छोटा-सा क्षण चरम अभीप्सा में या काफ़ी तीव्र प्रार्थना में जी लो तो तुम घण्टों ध्यान करके जितना जान सकते हो उससे कहीं अधिक जान लोगे।

२६. व्यक्तिगत जीवन का प्रयोजन है भगवान् को खोजने और उनके साथ एक होने का आनन्द। जब तुम यह बात समझ लो तो तुम सभी कठिनाइयों को पार करने की शक्ति पाने के लिए तैयार होते हो।

२७. नीरवता में अधिकतम ग्रहणशीलता रहती है और निश्चल-नीरवता में बड़े-से-बड़ा कार्य किया जाता है।

आओ, हम नीरव होना सीखें ताकि प्रभु हमारा उपयोग कर सकें।

२८. अगर चेतना के विकास को जीवन का मुख्य उद्देश्य मान लिया जाये तो बहुत-सी कठिनाइयों को अपना समाधान मिल जायेगा।

बूढ़ा होने से बचने का सबसे अच्छा उपाय है प्रगति को अपने जीवन का उद्देश्य बनाना।

२९. प्र. माँ, मुझे क्या करना चाहिये कि मेरे अन्दर की अभीप्सा की अग्नि कभी न बुझने पाये?

उ. हम इस अग्नि को अपनी सभी कठिनाइयों, अपनी समस्त कामनाओं, समस्त अपूर्णताओं की हवि देकर प्रज्वलित रखते हैं। हर सुबह और शाम जब तुम मेरे पास आओ तो तुम्हें मुझसे यह माँगना चाहिये कि मैं तुम्हारे हृदय में इस अग्नि को प्रज्वलित रखूँ और तुम्हें मुझे इन सब चीज़ों को ईंधन के रूप में अर्पित कर देना चाहिये।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

मानवजाति का विकास

श्रीअरविन्द की शिक्षा का आरम्भ होता है प्राचीन ऋषियों की शिक्षा से कि एक दिव्य चेतना या ब्रह्म चेतना है जो सारे जगत् में फैली हुई है और यह चेतना प्रतिविकास की प्रक्रिया में मन, प्राण और भौतिक-शारीरिक चेतना बन गयी।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि इसके बाद विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। विकास इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि उससे पहले अन्तर्लयन या प्रतिविकास हो चुका था। विकास में पहला क़दम था, जड़ से प्राण, या यूँ कहें पत्थर से वनस्पति और वनस्पति से पशु-जीवन की ओर विकास। जीवन, जो पहले ही जड़-पदार्थ में निहित था प्रकृति ने उसे अभिव्यक्त करने के लिए एक रूप प्रदान कर दिया।

अब प्राण से आगे विकास चला मन की ओर, यानी, पशु से मनुष्य की ओर। फिर से प्रकृति ने एक नया शरीर उत्पन्न किया जो मन को अभिव्यक्त कर सकता था, क्योंकि यदि पशु में मन अभिव्यक्त हो भी जाता फिर भी वह उसे उचित तरीक़े से विकसित न कर पाता। अपने कण्ठ से वह गा न सकता, अपने पंजे से वह लिख न पाता। इसलिए प्रकृति ने एक नया शरीर उत्पन्न किया। श्रीअरविन्द के विकास-सम्बन्धी सिद्धान्त और विज्ञान के सिद्धान्तों में यह बड़ा फ़र्क है कि यह केवल शरीर का विकास नहीं है, यह चेतना और रूप दोनों का विकास है।

श्रीअरविन्द का कहना है कि विकास मनुष्य पर ही रुक न जायेगा। वह मनुष्य से बढ़ कर अगले स्तर, अतिमानसिक सत्ता तक जायेगा और उनके अनुसार अमुक क्रियाओं के द्वारा, जिन्हें वे पूर्णयोग कहते हैं, यह विकास बढ़ेगा और तेज़ होगा।

श्रीअरविन्द के अन्तर्दर्शन का दूसरा पक्ष यह है कि यह विकास एकाकी नहीं हो सकता, यह कम-से-कम कुछ छोटे-छोटे समाजों का सामुदायिक प्रयास होना चाहिये। उन्होंने एक सामाजिक रूपान्तर, एक सामुदायिक जीवन का विचार दिया जिसमें हर व्यक्ति का अपना ऐसा स्थान होगा जिसके

लिए वह सबसे ज़्यादा उपयुक्त हो और जहाँ वह अपना अच्छे-से-अच्छा योगदान दे सके। और बदले में समुदाय व्यक्ति की अनुभूतियों और प्रगति के लिए आधारभूत आवश्यकताएँ प्रदान करेगा। इस भाँति हर व्यक्ति को अधिक-से-अधिक प्रगति करने का मौक़ा मिलेगा और सामुदायिक जीवन में उच्चतम प्राप्ति होगी। श्रीअरविन्द इसे 'आध्यात्मिक समाज' कहते हैं, यहाँ सामुदायिक जीवन का उद्देश्य होगा, भगवान् को शिक्षा, संगीत, चित्रकला आदि जीवन के सभी क्रिया-कलापों के द्वारा अभिव्यक्त करना।

उनका तीसरा अन्तर्दर्शन है, स्वाधीनता और संगठित विभिन्नता में मानव एकता। श्रीअरविन्द जगत् की समस्याओं का सर्वांगीण और समग्र दर्शन करते हैं। वे कहते हैं कि विश्व अधिकाधिक बड़े समूहों की ओर गति कर रहा है, व्यक्ति से परिवार, परिवार से कुल, कुल से छोटे रजवाड़े, नगर, राज्य, फिर देश और साम्राज्य और अब संयुक्त राष्ट्र। उनका कहना है कि जब छोटी-छोटी इकाइयाँ थीं तो जीवन ऊर्जा, सांस्कृतिक क्रिया-कलाप से खदबदा रहा था, परन्तु वे सदा एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते थे और असुरक्षित रहते थे। जब साम्राज्य आये तो ज़्यादा शान्ति आयी, लेकिन सभी सांस्कृतिक क्रिया-कलाप और जीवन की अन्य गतिविधियाँ केन्द्र में आ गयीं और अन्य भागों ने अपनी जीवन-शक्ति और ऊर्जा खो दीं। परन्तु यह कोई आदर्श समाधान न था। आख़िर साम्राज्य भी टूट गये।

श्रीअरविन्द ने कहा है कि अगर विश्व-ऐक्य आना है तो हमें व्यक्तिगत और सामूहिक स्वाधीनता, व्यक्तिगत और सामूहिक प्रगति में समन्वय लाना होगा। उनका कहना है कि मानवजाति के सभी राजनीतिक तन्त्र—गणतन्त्र, साम्यवाद, समाजवाद आदि एक ऐसे जीवन की खोज में हैं जहाँ हर व्यक्ति ख़ुश रह सके, जहाँ हर व्यक्ति अपनी उच्चतम सम्भावना को पा सके। लेकिन सबमें छिद्र हैं। उदाहरण के लिए, साम्यवाद के सिद्धान्त को देखिये, जिसमें माना यह जाता है कि हर एक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया और उसकी क्षमता के अनुसार उससे लिया जाये। केवल क़ानून की शक्ति से तो इसे पूरा नहीं किया जा सकता; यह तभी हो सकता है जब मनुष्य आध्यात्मिक चेतना में विकसित हो।

इसी तरह गणतन्त्र के सिद्धान्त, स्वाधीनता, समानता और भ्रातृभाव को लें। श्रीअरविन्द कहते हैं कि अगर तुम समानता लाना चाहो तो तुम्हें

स्वाधीनता में कुछ कमी करनी होगी और अगर तुम स्वाधीनता चाहो तो कुछ असमानता आकर रहेगी। दोनों तभी रह सकती हैं जब वे भ्रातृभाव पर आधारित हों। यह भी एक आध्यात्मिक विचार है। तो यह रहा श्रीअरविन्द की दृष्टि का चौथा पक्ष कि जगत् का भविष्य मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक चेतना के विकास में है। उनका कहना है कि जगत् को तीन स्थितियों में से गुज़रना होगा : पहली है अवबौद्धिक स्थिति, फिर वर्तमान बुद्धिवाद की स्थिति और भविष्य में आयेगी अतिबौद्धिकता की स्थिति।

श्रीअरविन्द का कहना है कि भविष्य में भारत को एक बहुत बड़ी भूमिका अदा करनी है, क्योंकि भारत अपने आध्यात्मिक ज्ञान, आध्यात्मिक प्रज्ञा, आध्यात्मिक मूल्यों पर श्रद्धा के कारण **वह** देश है जो पृथ्वी पर एक बड़े पैमाने पर नये जीवन की तैयारी कर सकता है। इस तैयारी के लिए श्रीअरविन्द एक साथ दो गतियाँ देखते हैं। एक गति है अतिमानसिक चेतना का कुलीनों में मूर्तिमान् होना जो भविष्य के नेता होंगे। उन्हें लगता है कि मन के विकास की तरह ही अतिमानस का विकास होगा। जैसा कि हम जानते हैं, श्रीमाँ ने १९५६ में अतिमानसिक चेतना के अवतरण की घोषणा की थी। अगर लोग अपने-आपको उसकी ओर खोल सकें तो वह चेतना उन्हें राह दिखायेगी, अगर लोग उसकी सहायता के लिए अभीप्सा कर सकें तो वह उन्हें आगे ले चलेगी। सिद्ध पुरुषों का एक छोटा-सा दल होना चाहिये जो इस अन्तर्भासिक चेतना को मूर्त रूप दे सके, ऐसी चेतना को जो मन से ज़्यादा शक्तिशाली हो ताकि वे उससे पथ-प्रदर्शन ले सकें और अधिक प्रभावशाली तरीक़े से काम कर सकें। और साथ ही प्राचीन काल की तरह लोगों का एक समूह होना चाहिये जो उनका अनुसरण करने के लिए तैयार हों और वे सामूहिक जीवन को दिव्य प्रकाश में व्यवस्थित कर सकें जैसा कि प्राचीन ऋषि किया करते थे।

वस्तुतः, यदि हम शान्ति से सोचें तो हम अनुभव करेंगे कि जगत् की भावी सत्ता को मनुष्य के अन्दर से आना चाहिये, एक आन्तरिक नियन्त्रण होना चाहिये जिसमें हर व्यक्ति को यह चुनाव करना होगा कि वह प्राचीन मानवता में बना रहेगा या नये अतिक्रमण के लिए काम करेगा।...

(क्रमशः)

—नवजातजी

"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र

('मेरी नन्हीं मुस्कान' के नाम, यह उन पहले बच्चों में से थी जिन्हें आश्रम में प्रवेश मिला था। यह चौदह वर्ष की अवस्था में आयी थी। नन्हीं मुस्कान बहुत वर्षों तक माताजी के कपड़ों पर कशीदाकारी करती रहीं और फिर उनकी व्यक्तिगत सेविकाओं में से एक हो गयीं। उन्होंने सत्रह वर्ष की अवस्था में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।)

माँ,

कल रात जब मैं रात के साढ़े नौ के क़रीब सोने गयी तो मुझे एक तरह का डर-सा लगा मानों कोई वहाँ था या आ सकता था। मैंने आँखें बन्द कर लीं और थोड़ी देर बाद मुझे नींद में एक तरह का डर-सा लगा। मैंने आँखें खोलीं, आकाश की ओर देखा और फिर से आँखें बन्द कर लीं। मुझे ऐसा लगा मानों बादल जैसी कोई चीज़ मेरी ओर आ रही है और मैंने आँखें खोल दीं...

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हें डरना नहीं चाहिये। अगर तुम कोई ऐसी चीज़ देखो जिससे तुम्हें डर लगता है या कोई अप्रिय भाव आता है तो तुम्हें मुझे पुकारना चाहिये और वह चीज़ ग़ायब हो जायेगी। जब तुम जगी होती हो तो निश्चय ही तुम क़रीब आते हुए गरजते बादल से नहीं डरतीं न? तब वह तुम्हें रात को क्यों डरा पाये?

बिना डरे अपने-आपको मेरी बाँहों में सौंप दो और विश्वास रखो कि तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। मेरी शक्ति और मेरा संरक्षण हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

मेरे मधुर प्रेम के साथ।

१८ जून १९३५

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है। मैं कोई कारण नहीं देखती कि तुम

मज़ेदार चीज़ें पढ़ने की जगह उबाऊ अभ्यास क्यों करो।

कोई भाषा सीखने के लिए तुम्हें पढ़ना, पढ़ना और अधिक पढ़ना चाहिये—और जितना हो सके उसे उतना बोलना चाहिये।

मेरे समस्त प्रेम के साथ।

१० जुलाई १९३५

मेरी नन्हीं मुस्कान,

तुमने अपनी स्थिति का बड़ा अच्छा वर्णन किया है और चूँकि तुम उसके बारे में इतनी सचेतन हो इसलिए मुझे लगता है कि तुम जल्दी ही उसे वश में कर सकोगी।

यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि तुम्हारे अन्दर शान्ति और नीरवता लाने के लिए हमारी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है और यह एकदम निश्चित है कि एक दिन तुम्हारे अन्दर शान्ति और नीरवता इस तरह प्रतिष्ठित हो जायेंगी कि फिर वे तुम्हें कभी न छोड़ेंगी।

बहुत स्नेह के साथ।

८ अगस्त १९३५

माँ,

आपने मुझे बतलाया है कि मेरे अन्दर कोई चीज़ बन्द है जो आपकी ओर नहीं खुलती और इसीलिए जब मैं अपने हृदय में आपके प्रेम को अनुभव करना चाहती हूँ (जिसके बारे में आपने कहा है कि वह हमेशा रहता है) तो मैं उसे अनुभव नहीं करती। मेरे अन्दर ऐसी कौन-सी चीज़ है जो बन्द रहती है? मेरा हृदय? या कोई और चीज़ है? मैं यह सब नहीं समझ पाती।

मैं चाहती हूँ कि मेरा हृदय आपके प्रति खुले और मैं वहाँ हमेशा आपके प्रेम का अनुभव करूँ। लेकिन अगर वह सचमुच बन्द है तो मैं उसे कैसे खोल सकती हूँ? मुझे उसे खोलने के लिए क्या करना चाहिये? मैं सचमुच चाहती हूँ कि वह आपके प्रति खुल जाये और मैं हमेशा सुखी रहना चाहती हूँ।

मेरी प्यारी नन्हीं मुस्कान,

मैं केवल एक ही तरीक़ा जानती हूँ : अपने-आपको पूरी तरह, पूर्ण उत्सर्ग के साथ भगवान् को दे दो। तुम अपने-आपको जितना अधिक दोगी उतनी ही अधिक खुलती जाओगी और जितनी अधिक खुलती जाओगी उतना ही अधिक पाओगी; और आत्मदान की इस घनिष्ठता में तुम आन्तरिक उपस्थिति और उसके साथ आने वाले आनन्द के बारे में सचेतन हो जाओगी।

तुम्हारी माँ की ओर से मधुर प्रेम।

२५ जुलाई १९३६

माँ,

मैं आपको स्पष्ट रूप से बता दूँ कि मैं कब ख़ुश नहीं रहती : जब कोई मुझे ख़ुशी से अपनी सुन्दर और सुखद अनुभूतियों के बारे में सुनाता है तो मैं अपने-आपको बहुत तुच्छ अनुभव करती हूँ। मुझे लगता है कि मेरे अन्दर अभी तक वह चीज़ नहीं है जो होनी चाहिये।

और मैं हमेशा आपसे शान्ति और नीरवता की माँग करती हूँ (जैसा कि मैंने उस दिन कहा था), क्योंकि मैं जानती हूँ कि अगर हम सदा उस शान्ति और नीरवता को रख सकें तो किसी भी कारण से अपने-आपको तुच्छ अनुभव न करेंगे।

मैं ऐसी तुच्छ नहीं होना चाहती, ऐसी तुच्छ अनुभव करना नहीं चाहती।

तुम्हें शान्ति और नीरव आनन्द का यह अनुभव पहले ही हो चुका है; तुम जानती हो कि वह क्या है और वह निश्चित रूप से ज़्यादा प्रबल और स्थिर रूप से वापस आयेगा। विश्वास रखो, अपने-आपको यन्त्रणा न दो —इस तरह तुम उसके आगमन को तेज़ कर सकती हो।

तुम्हारी माँ की ओर से मधुर प्रेम।

३० जुलाई १९३६

'श्रीमातृवाणी' खण्ड १६, पृ. १११-१४

'योग के तत्त्व'

कठिनाइयाँ तथा प्रगति

(१)

साधना में कब तक कठिनाइयाँ तथा रुकावटें बनी रहती हैं?

यह साधकों के ऊपर निर्भर करता है।

किस तरीक़े से यह उन पर निर्भर करता है? क्या इसका यह मतलब हुआ कि कठिनाइयाँ तब तक बनी रहती हैं जब तक वे इसे रखना चाहते हैं?

हाँ, या जब तक उनमें कोई चीज़ कठिनाइयों का कारण बनती रहती है।

यह कैसी बात है कि हम जितनी निष्ठा से कठिनाइयों का सामना करने तथा अपनी प्रकृति में उन्हें जीतने की कोशिश करते हैं उतनी ही अधिक वे बढ़ती रहती हैं?

वे विरोधी या विपरीत शक्तियाँ होती हैं जो हमला करती हैं क्योंकि उनमें यह डर बना रहता है कि साधना की सफलता से व्यक्तियों पर से उनका नियन्त्रण हटा दिया जायेगा।

जब-जब मैं आन्तरिक रूप से अपने-आपको अच्छी स्थिति में पाता हूँ तथा निष्ठापूर्वक प्रगति करने का प्रयास करता हूँ, तब-तब मैं देखता हूँ कि कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं। ऐसा क्यों होता है?

तुम अकेले नहीं हो जिसे ऐसा अनुभव होता है; सभी को इस तरह का अनुभव होता है।

क्या इससे यह प्रमाणित होता है कि मैं योग करने में सक्षम नहीं हूँ?

उस हालत में तो यह प्रमाणित होगा कि सभी अक्षम हैं—क्योंकि सभी को समान अनुभव होता है।

अगर साधक को अपनी साधना में कोई भी प्रगति करने में मुश्किल होती है तथा वह लगातार मुश्किलों का सामना करता रहता है, तो वह आश्रम में कैसे रह सकता है?

मैं इस प्रश्न को नहीं समझ पा रहा हूँ। जिन्हें आश्रम में रहना है और जो अपनी साधना में सच्चे हैं वे चाहे जितनी मुश्किलें क्यों न हों, यहाँ रह सकते हैं।

क्या यह तथ्य है कि जब तक साधक अपनी प्रकृति के दोषों को जीत नहीं लेते, उन्हें भगवान् द्वारा आरोपित विभिन्न परीक्षाओं में से गुज़रना पड़ता है?

यह एक परीक्षा नहीं है, यह केवल प्राकृतिक नियम है कि योग के उद्देश्य को उपलब्ध करने से पहले उन्हें इन चीज़ों से छुटकारा पाना ही होगा।

क्या यह सच है कि साधना करते समय साधक के बल को जाँचने के लिए विरोधी शक्तियाँ हमला करती तथा मुश्किलें पैदा करती रहती हैं?

साधकों पर हमला करना तथा उन्हें परेशान करना तो विरोधी शक्तियाँ अपना कर्तव्य-सा बना लेती हैं, लेकिन अगर कोई ग़लत गतिविधि और कोई अपूर्णता तथा कमज़ोरी न हों तो साधक परेशान नहीं हो सकते।

मुझे यह कैसे पता चलेगा कि मैं साधना में प्रगति कर रहा हूँ या नहीं, और क्या श्रीमाँ की 'शक्ति' तथा 'कृपा' से मेरी सत्ता में कोई रूपान्तर हो रहा है?

अगर यह हो रहा है तो तुम इसके प्रति सचेतन हो जाओगे।

आश्रम में कुछ साधकों का कहना है कि उन्हें यह पता नहीं चलता कि वे कोई प्रगति कर रहे हैं या नहीं क्योंकि उन्हें प्रगति का कोई संकेत मिलता ही नहीं जान पड़ता। इसका क्या कारण है?

यह केवल यह दर्शाता है कि वे अचेतन हैं।

लेकिन क्या यह कहा जा सकता है कि कोई संकेत न मिलने पर भी वे वास्तव में प्रगति कर रहे हैं?

व्यक्ति को पूरी तरह से समझे बिना भी अनुभूतियाँ हो सकती हैं; लेकिन अगर वे कुछ भी अनुभव नहीं करते, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वे प्रगति कर रहे हैं।

जब साधक अनुभूतियाँ पाना आरम्भ करता है तो क्या इसका यह मतलब हुआ कि वह प्रगति कर रहा है?

यह चीज़ यह दिखलाती है कि वह प्रगति कर रहा है।

यदि साधक अपनी कमज़ोरी के बारे में निरन्तर सोचता रहता और दुःखी रहता है तो क्या यह उसकी प्रगति में बाधा है?

हाँ। उसे भगवान् के बारे में ज़्यादा और अपने बारे में कम सोचना चाहिये।

आजकल मेरे पिछले जीवन की सभी प्रकार की यादें मेरे दिमाग़ पर दबाव डाल रही हैं। इसका क्या कारण है?

वे अवश्य ही अवचेतना में से उभर कर आ रही होंगी ताकि तुम उनसे छुटकारा पा लो।

इन यादों के दबाव से छुटकारा पाने का क्या तरीक़ा है?

जैसे ही वे आयें, उन्हें निकाल बाहर करो तथा सत्ता में किसी भी चीज़ को उन्हें स्वीकार करने या उनमें किसी भी तरह की कोई दिलचस्पी न लेने दो।

मेरी साधना में आने वाली अधिकतर रुकावटों तथा अवसाद का कारण यह है कि मेरा मन संकीर्ण तथा अविकसित है। इस दोष

को दूर करने के लिए सबसे अच्छी चीज़ क्या है?

चैत्य के द्वारा योग विकसित होता है; मन मुख्य चीज़ नहीं है।

क्या यह तथ्य नहीं है कि संकीर्ण तथा अविकसित मस्तिष्क की वजह से रुकावटें और अवसाद आते हैं?

अधिक तो ये प्राणिक असन्तोष या शारीरिक चेतना तथा उसकी जड़ता और तमस् से आते हैं।

प्रकृति के सभी भागों में से 'तमस्' या 'जड़ता' को निकाल बाहर करने का सबसे तेज़ तथा सबसे प्रभावशाली तरीक़ा क्या है?

'भागवत शक्ति' को वहाँ काम करने के लिए नीचे बुलाना।

मैं अपने शरीर को इतना निष्क्रिय और सुस्त क्यों महसूस करता हूँ?

यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह प्राण के तालमेल में है या नहीं। शरीर की प्रकृति तामसिक होती है—वह प्राण ही है जो उससे गति करवाता है तथा साधन के रूप में उसका उपयोग करता है। अगर प्राण प्रबुद्ध हो तो 'भागवत शक्ति' पूरे शरीर में काम कर सकती है।

यह कब कहा जाता है कि प्राण प्रबुद्ध है?

प्राण को न सिर्फ़ सभी निम्न गतिविधियों को त्यागना है बल्कि ऊपर से आने वाले प्रकाश की ओर खुलना तथा उसे ग्रहण भी करना है ताकि वह 'भागवत इच्छा' तथा प्रेरणा को ग्रहण कर सके तथा उसे जान भी सके —तब कहा जा सकता है कि प्राण प्रबुद्ध है।

—श्रीअरविन्द

पीछे मत देखो, हमेशा आगे देखो,
तुम जो करना चाहते हो उसे देखो—तो तुम निश्चय ही प्रगतिशील होओगे।
—श्रीमाँ

"अविकसित"... कौन?

मेरे भाई केविन को पता है कि गिरजाघर से कहीं ज़्यादा भगवान् उसकी खाट के नीचे बसते हैं। कुछ साल पहले एक रात उसके कमरे के सामने से गुज़रते हुए मैंने उसे कहते हुए सुना था—"लो यीशु, मैं आ गया सोने, तुम भी आ गये क्या अपने बिस्तर पर?"

मेरी हलकी खिलखिलाहट फूट पड़ी थी, उसके दरवाज़े के सामने ही ठिठक गयी थी मैं और मेरी उत्सुकता ने आगे बढ़ कर उसके कमरे का दरवाज़ा ज़रा-सा खोल दिया था—मैंने दरार से झाँक कर देखा—केविन पलंग के पास उकड़ूँ बैठा नीचे झाँक रहा था—"थक गये क्या यीशु? क्या कहा, छुपा-छुप्पी खेल रहे थे? लेकिन पकड़ में तो आ ही जाते हो न रोज़ मेरी..." और उसने अपने यीशु को हाथ बढ़ा कर बिस्तर के बाहर निकाल लिया...। मेरे लिए तो सब शून्य ही शून्य था, लेकिन केविन तो रूबरू अपने प्रभु से बतिया रहा था, उनसे हँसी-मज़ाक कर रहा था, दिनचर्या का अपना हवाला दे रहा था—बाग़ में कितने नये फूल खिले, कितने पक्षियों की बोली निकाल-निकाल कर उसने उनका दिल बहलाया, विद्यालय में क्या किया, घर आकर कितना हाथ बँटाया... सामने बैठे यीशु उसकी बात ज़रूर सुन रहे थे क्योंकि अपनी बात करते-करते वह बीच-बीच में रुक कर उनकी बात सुनता, कभी खिलखिला उठता तो कभी उनकी पीठ पर हलका-सा धौल भी जमा देता और उठते-उठते वह उनसे गले मिला, बिस्तर पर बैठ कर नीचे झुका। फिर "शुभ रात्रि" कह दोनों अपने-अपने बिस्तरों में दुबक गये थे...!!!

केविन मेरा बड़ा भाई, तीन नहीं, बीस साल का बच्चा है। बीस वर्ष पहले जन्मा मेरा भैया दुनिया की नज़रो में मानसिक रूप से अपंग है... लेकिन जब से मैं ज़िन्दगी को समझने-परखने के क़ाबिल हुई तब से मैं यही सोचा करती हूँ कि सचमुच अविकसित है कौन? मैं या दुनिया की नज़रों में "मन्द बुद्धि" मेरा प्यारा-सा भाई?? मुझे तो इसका सन्तोषजनक उत्तर कभी नहीं मिलता, सच कहूँ तो पासा पलट कर हम "बुद्धिमानों" पर ही आ गिरता है!

लम्बे-चौड़े, छह फ़ुटे केविन की अपनी ही निराली दुनिया है। मैं

कभी-कभी उसके उस जगत् में उसके साथ हो लेती हूँ तो मुझे अपनी यह दुनिया कितनी उबाऊ, चौकोर-चौकोर खण्डों में बँटी हुई, दमघोटूँ, कैसी तो कतरी-ब्योंती लगती है, जब कि केविन का हाथ पकड़, उछल कर जब दहलीज़ पार कर उस तरफ़ पहुँच जाती हूँ तो खुले आसमान का नीला आँचल हम पर लहराता ही रहता है, वहाँ हर काम में हड़बड़ी मचाने के लिए न तो टिकटिकाती हैं घड़ी की सूइयाँ, न होती है आपा-धापी। वहाँ मुझे केविन के साथ-साथ वह सब दिखलायी देता है जो मैं कभी इस नीरस दुनिया में अकेले देख ही नहीं सकती...। उन सब चीज़ों के दर्शन कराता है मुझे मेरा भाई। क्रिस्मस के आस-पास वह मुझे "सैण्टा" दिखलाता है —"देख, देख रोज़ी, उपहारों से लदी स्लेज को खींचते हुए सैण्टा के वे बारहसिंगे। देख पा रही है सैण्टा को न? बिचारे हर साल कैसे फँसे बैठे रहते हैं अपने उपहारों के बीच... लहराती दाढ़ी से ही पहचान में आते हैं वे।" मैं खिलखिला उठती, हमें देख सैण्टा हाथ हिला कर हमारा ज़ोरदार अभिवादन करते और इशारे से हमें भी साथ हो लेने के लिए कहते और हम दोनों भी सैण्टा के साथ-साथ हवा में उड़ते-उड़ते अपने शहर की हर चिमनी से उतर कर जॉन, जो, माइकेल, लूसी, हेदी, पीटर... हर एक के घर पर जाते और उपहार सजाने में उनकी पूरी-पूरी मदद करते...। जानते हैं, हम सबके चहेते 'फ़ादर क्रिस्मस' भी ख़ूब मज़ेदार और चालाक हैं। जब हम अपने घर की चिमनी के पास आते तो मुझे और केविन को वहीं रुकने का इशारा कर देते। कहते—"न, न, अपने उपहार भी देख लोगे तो आश्चर्य क्या रहेगा?..."

और हम वहीं थम जाते...।

केविन मुझसे हमेशा कहा करता था, "रोज़ी, तुझे पता है, हवाई जहाज़ों को देवदूत अपने कन्धों पर सम्हाल लेते हैं नहीं तो क्या वे अधर में यूँ ही उड़ सकते हैं भला?"

जब-जब मैं केविन के जगत् में होती, हवाई जहाज़ों के वे देवदूत मुझे एकदम साफ़ नज़र आते।

केविन के साथ-साथ मैंने क्या-क्या नहीं देखा?? वह जो सुनता, महसूस करता, देखता, उन सबकी साक्षी मैं भी होती! उस दुनिया में सब कुछ सुन्दर था, सरल था, फूल-पत्ते, पशु-पक्षी, तितलियाँ-भौंरे, चाँद-सितारे सब

वहाँ सजीव हँसते-गाते, बतियाते-चहकते थे। न थी वहाँ कोई अनबन, न किसी भी तरह की सौदेबाज़ी।

लेकिन मेरा दुर्भाग्य कि मैं रोज़ी थी, केविन नहीं। रोज़ी, जो दुनिया की नज़रों में अपने "मन्द-बुद्धि" भाई की पूरी-पूरी देखभाल करने वाली बड़ी सयानी किशोरी थी!! और इसलिए मुझे इस नीरस दुनिया के इशारों पर नाचना था!—विद्यालय जाना, समय पर गृहकार्य पूरे करना, सबक रट कर परीक्षाओं में बैठना, घर की कुछ ज़िम्मेदारियाँ सम्हालना, सलीके से उठना-बैठना... हे भगवान्! इस दुनिया की हर चीज़ पर "यह सही है", "यह ग़लत है", बस इन दोनों में से कोई एक बिल्ला क्यों टँका रहता है??? और केविन की दुनिया में?—वहाँ की हर चीज़ सही है, अपनी जगह पर है क्योंकि हर एक चीज़ का रचयिता वह ईश्वर, वह यीशु है।

केविन बचपन में विद्यालय भी जाता था, थोड़ा बड़ा हुआ, खेल में, विद्यालय में कभी बच्चों के मज़ाक का शिकार बनता तो मेरे आँसू टपक पड़ते थे, लेकिन वह मस्तमौला तो अपनी ही धुन में रमा रहता था। उसके लिए "असन्तोष" शब्द कोई मायने ही नहीं रखता था—घर में वह चहकता-फुदकता अपने बचपने से परिवार का मन मोहे रहता, काम के लिए वह एक ऐसी कर्मशाला में जाता था जहाँ उसी के जैसे कई "बड़े बच्चे" छिटपुट काम करते, जब थक जाते तो वहीं आराम कर लेते। केविन को सबसे अधिक भाती थीं "सैण्डविच"। घर-बाहर बस वह वही खाता, बाक़ी बच्चों की तरह वह भी इतवार के इन्तज़ार में आँखें बिछाये रहता, लेकिन औरों की तरह देर से उठने, पिक्चर देखने वग़ैरह के लिए नहीं बल्कि कपड़े धोने की मशीन निहारने... माँ हफ़्ते-भर के कपड़े इतवार सवेरे-सवेरे धोतीं और मशीन के अन्दर नाचते कपड़ों को देख वह कभी उछल-उछल कर नाचता तो कभी कमरे में चकरघिन्नियाँ काटता। मैं उसकी इस हरकत को बड़े प्यार से देखा करती क्योंकि वह मुझसे कहा करता था, "रोज़ी, जानती है, ये कपड़े अन्दर इसलिए ख़ुश होकर नाचते हैं क्योंकि इन पर जमा मैल पानी में बह जाता है और ये साफ़-सुथरे होकर बाहर आते हैं, वैसे ही जैसे जब हमारे अन्दर दुःख-दर्द का कोई मैल होता है तो वह भगवान् के सामने आँसुओं में बह जाता है और फिर हम साफ़ हो जाते हैं।"

हमारे घर में कितना बड़ा दार्शनिक उतर आया था मेरे भाई के रूप

में जिस पर दुनिया बरबस तरस खाती थी और मैं भगवान् को शुक्रिया अदा करते-करते न थकती थी...।

केविन की दिनचर्या में जौ-भर भी बदलाव न आता था। वह घर में भी माँ का हाथ ख़ूब बँटाता। मेरा भाई जो करता तन-मन से करता, और उसके कार्य पूर्णता की हद तक पहुँच जाते। उसे न कभी घड़ी की सूइयाँ काम को तेज़ी से निपटाने के लिए कहतीं न उसे दिन-रात का होश रहता। थकान, असन्तोष, खीज, क्रोध तो उसके पास फटकते ही नहीं, वह सारा दिन हँसता-खिलखिलाता, गुनगुनाता और मन-ही-मन अपने ईश्वर से गपियाता! न उसे धन-दौलत की परवाह है न चाह; खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने में उसने कभी नखरे नहीं किये, मोची से लेकर कर्मशाला के निदेशक—सबका वह दोस्त है, ऊँच-नीच का उसे ज्ञान नहीं है और काम से कभी वह अपने हाथ नहीं खींचता और जब काम ख़तम हो जाता है तो मेरा भाई अच्छी तरह शिथिल होकर आराम करना भी जानता है।

एक दिन मेरे विज्ञान के अध्यापक काल और देश की असीमता समझाने की कोशिश कर रहे थे और मेरी आँखों के सामने नाच रहा था केविन का चेहरा—वह सचमुच कालातीत था, देशातीत था।

भगवान् पर उसका विश्वास अटूट है और उनके साथ कभी वह बच्चा बन कर खेलता है, कभी सखा बन जाता है तो कभी-कभी पास-पड़ोस में कोई ग़लत काम होते देख वह भगवान् को नसीहत देकर उनका मसीहा भी बन जाता है!

मैं तो केविन नहीं हूँ। निराशा, दुःख, अवसाद, अहंकार कभी मुझे घेर लेते हैं तो मैं तिलमिला उठती हूँ, लेकिन मेरा सौभाग्य... अपने प्यारे मौजी भैया के सामने आते ही मेरा सारा ग़ुस्सा-खीज कपूर की तरह हवा हो जाते हैं! उसकी ख़ुशी संक्रामक जो है...। और मैं पल-पल यीशु से कहा करती हूँ—"धन्यवाद प्रभो, अनेकानेक धन्यवाद। केविन को हमारे पास भेज कर आपने हमारे परिवार पर कितना बड़ा उपकार किया!"

मैं जानती हूँ कि जैसे-जैसे मैं बड़ी होती जाऊँगी, जब तक ज़िन्दगी की मेरी नौका उस पार के तट तक नहीं लगेगी, बीच-बीच में मेरी नाव ऊभ-चूभ करती रहेगी क्योंकि मेरा मन संसारी जो ठहरा, लेकिन मुझे पता है कि मेरा मासूम भाई, जो दुनिया की नज़रों में "अविकसित" है, समय

आने पर उस तट पर आसानी से पहुँच जायेगा क्योंकि वह उन भगवान् के साथ रोज़ रात को हँसता-बतियाता है जो उसकी खाट के नीचे बसते हैं।

और एक दिन जब भगवान् अपने स्वर्ग के साथ इस धरती पर उतर आयेंगे तो हम सब कितने भौचक्के रह जायेंगे, क्या पता सह पायेंगे भी कि नहीं...? लेकिन केविन? उसके चेहरे पर तो हलकी-सी शिकन तक न पड़ेगी क्योंकि वह तो अपने संग-संग धरती पर उस स्वर्ग का एक टुकड़ा जो उतार लाया है...।

नवम्बर २००९ से —वन्दना

मुझसे मुख मत मोड़ो

मेरा भ्रम दूर करो।
मेरा भय नष्ट करो प्रभु!
मुझसे मुख मत मोड़ो,
तुम पास ही थे,
मैं पहचान न सका,
मैं कहीं और देख रहा था।
न जाने कहाँ?
तुम मेरे अन्तःकरण में निवास करो।
मेरे हृदय में हँसी का प्रकाश करो।
बोलो, मुझसे कुछ तो बोलो।
मेरे शरीर को स्पर्श करो।
दक्षिण हाथ बढ़ा कर मुझे उबार लो।
प्रभु मेरे सब ज्ञान भ्रामक हैं।
मेरा हास्य, मेरा रुदन भ्रामक है।
मेरे सामने आओ, मेरा भ्रम दूर करो।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सच्चा आनन्द

एक जिज्ञासु साधक सच्चे आनन्द की खोज में एक महात्मा के पास पहुँचा। उसने महात्माजी से बड़े आग्रह के साथ प्रार्थना की कि वे सच्चे आनन्द पर प्रकाश डालें। महात्माजी ने अपनी सहज-शान्त मुस्कान से उस दुःखी व्यक्ति की ओर देख कर कहा, "आज तो मैं बहुत अधिक व्यस्त हूँ। आज तुम जाओ, दस दिन के बाद आना, मैं कोशिश करूँगा कि तुम्हें सच्चे आनन्द की प्राप्ति हो जाये। हाँ, इन दस दिनों में तुम परिवार, समाज सबसे अलग रह कर एकान्त में मौन व्रत में अपना समय बिताना।"

वह साधक सच्चे आनन्द का जिज्ञासु था। उसने महात्माजी की शर्त का अक्षरशः पालन किया। वह उन दस दिनों तक सबसे पृथक् रह कर, पूर्ण मौन रह कर, आत्म-चिन्तन में लगा रहा। दस दिन के बाद वह साधक जब महात्माजी के पास पहुँचा, तब वह उनसे कोई जिज्ञासा करने के स्थान पर बोला, "आपकी शर्त ने मुझे आनन्द-सागर में गोते लगाने का अवसर दे दिया। इतने वर्षों में मुझे जो आनन्द नहीं मिला, वह मुझे इन दस दिनों में एकान्तवास और मौन में मिल गया। अब मेरी कोई जिज्ञासा नहीं रह गयी।"

सच है कि मौन अवस्था में हमारी सब वृत्तियाँ मरती नहीं, वे प्राण के स्रोत में पहुँच कर, अन्तर्मुखी होकर नव-जीवन का घूँट पीने लगती हैं। जब वे बहिर्मुखी होती हैं, तब अपने को क्षीण करती हैं; अन्तर्मुखी होकर वे शक्ति और आनन्द का स्रोत बन जाती हैं। सच है कि बोलना सीखने में समय नहीं लगता, किन्तु चुप रहना हम उम्र-भर नहीं सीख पाते।

प्रस्तुतिः नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

तुम्हारे हर प्रयास में मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। —श्रीमाँ

Space on this page is offered by:

DEORAH SEVA NIDHI

Charitable Trust Dedicated to Service
(Founder trustee: Late Shri S. L. Deorah)
25, Ballygunge Park, Kolkata - 700 019

Date of Publication: 1st **February 2020**
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

A school by **The Vatika Group** vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2019-20

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363